भोजपुरी और उसका साहित्य

: भोजपुरी-भाषा और साहित्य का परिचयात्मक विश्लेषण :

लेखक

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय

एम० ए० पी-एच० डी०

सम्पादक : क्षेमचन्द्र 'सुमन'

सरस्वती सहकार, दिल्ली-शाहदरा

की ओर से प्रकाशक

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

प्रथम संस्करण, १९५७

Library IIAS, Shimla
491.437 Up 1 B
00039022

मूल्य : दो रुपये २५ नये पैसे

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No.
Date
491.437
Up 1 B
491.437

क्षेमचन्द्र 'सुमन' संचालक सरस्वती सहकार, जी. १० दिलशाद गार्डन दिल्ली-शाहदरा के लिए राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं श्री गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित।

निवेदन

स्वतन्त्र भारत के साहित्यिक विकास में भारत की भाषाओं तथा उपभाषाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज यह अत्यन्त खेद का विषय है कि हमारे देश का अधिकांश पठित जन-समुदाय अपनी प्रादेशिक और समृद्ध जनपदीय भाषाओं के साहित्य से सर्वथा अपरिचित है। कुछ दिन पूर्व हमने 'सरस्वती सहकार' संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा 'भारतीय साहित्य-परिचय' नामक एक पुस्तक-माला के प्रकाशन की योजना बनाई और इसके अन्तर्गत भारत की लगभग २८ भाषाओं और समृद्ध उपभाषाओं के साहित्यिक विकास की रूप-रेखा का परिचय देने वाली पुस्तकें प्रकाशित करने का पुनीत संकल्प किया। इस पुस्तक-माला का उद्देश्य हिन्दी-भाषी जनता को सभी भाषाओं की साहित्यिक गति-विधि से अवगत कराना है।

हर्ष का विषय है कि हमारी इस योजना का समस्त हिन्दी-जगत् ने उत्फुल्ल हृदय से स्वागत किया है। प्रस्तुत पुस्तक इस पुस्तक-माला का एक मनका है। आशा है हिन्दी-जगत् हमारे इस प्रयास का हार्दिक स्वागत करेगा। इस प्रसंग में हम इस पुस्तक के लेखक डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के हार्दिक आभारी हैं, जिन्होंने अपने व्यस्त जीवन में से कुछ अमूल्य क्षण निकालकर हमारे इस पावन यज्ञ में सहयोग दिया है। राजकमल प्रकाशन के सञ्चालकों को भूल जाना भी भारी कृतघ्नता होगी, जिनके सक्रिय सहयोग से हमारा यह स्वप्न साकार हो सका है।

जी. १० दिलशाद गार्डन,
दिल्ली-शाहदरा

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

प्रस्तावना

'भोजपुरी और उसका साहित्य' नामक पुस्तक को आज पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। प्रस्तुत पुस्तक में भोजपुरी भाषा और साहित्य का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास किया गया है। इसमें लोक-साहित्य की मीमांसा के अतिरिक्त भोजपुरी लोक-संगीत, लोक-कला तथा लोक-नृत्य और लोक-नाट्य की चर्चा भी की गई है। इस प्रकार इस पुस्तक को सर्वाङ्गीण बनाने में कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा गया है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है भोजपुरी भाषा और साहित्य के इतिहास को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का यह सर्वप्रथम प्रयास है। इन पृष्ठों में जो सामग्री दी गई है वह सर्वथा मौलिक है। मुझे इस प्रयत्न में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है इसका निर्णय तो अधिकारी विद्वान् ही कर सकते हैं। मैं तो कालिदास के शब्दों में यही कहना चाहता हूँ कि—

"आपरितोषात् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोग विज्ञानम्।"

मुझे इस पुस्तक के लिखने में पितृ-कल्प ज्येष्ठ भ्राता पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य; रीडर, संस्कृत-विभाग हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी से प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिला है। आदरणीय अग्रज डॉ० वासुदेव उपाध्याय एम० ए०, डि० लिट्०; लेक्चरर, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृत-विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना ने भी इस सम्बन्ध में अनेक बहुमूल्य

सुझाव मेरे सामने उपस्थित किये हैं। अतः उपर्युक्त कृपा के लिए मैं दोनों भाइयों का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। मेरे प्यारे चिरंजीव हरिशंकर उपाध्याय बी० ए०, साहित्यरत्न ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने में मेरी बड़ी सहायता की है। अतः वे मेरे आशीर्वाद के भाजन हैं।

यदि इस पुस्तक से भोजपुरी-साहित्य का थोड़ा भी प्रचार हो सका तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

६१, लूकरगंज
प्रयाग

कृष्णदेव उपाध्याय

क्रम

१. विषय-प्रवेश	-	-	६
२. भोजपुरी भाषा	-	-	१३
३. सन्त-साहित्य	-	-	३२
४. लोक-साहित्य	-	-	५५
५. आधुनिक साहित्य	-	-	७६
६. लोक-काव्य-संग्रह	-	-	११३
७. लोक-नृत्य—नाट्य	-	-	१२२
८. लोक-संगीत	-	-	१३१
९. लोक-कला	-	-	१३६
१०. उपसंहार	-	-	१४४
अध्ययन-सामग्री	-	-	१४६

: १ :

विषय-प्रवेश

किसी देश का लोक-साहित्य उस देश की जनता के हृदय का उद्गार है। वह उनकी हार्दिक भावनाओं का सच्चा प्रतीक है। यदि किसी देश की सभ्यता का अध्ययन करना हो तो सर्वप्रथम उसके लोक-साहित्य का अध्ययन आवश्यक होगा। लोक-साहित्य जन-समाज की वस्तु है; अतः उसमें जनता का हृदय लिपटा रहता है। यह साहित्य कृत्रिमता से कोसों दूर रहता है। गाँव के अशिक्षित कवि के हृदय में जो भाव उमड़ पड़ते हैं उन्हें वह टूटी-फूटी पंक्तियों में गाने लगता है। ये ही पंक्तियाँ लोक-गीत का रूप धारण कर लेती हैं। गाँव की चौपाल में बैठा हुआ बूढ़ा किसान जाड़े की रात में आग के चारों ओर बैठे हुए बालकों को प्रेम और आश्चर्य से भरी हुई कहानियों को सुनाता है। वह उनके कुतूहल को बढ़ाता हुआ, कल्पना की लगाम को ढीली करके तब तक उनको रस-सागर में डुबोता है जब तक वे उसमें निमग्न नहीं हो जाते। ये ही कहानियाँ लोक-कथा कहलाती हैं जिनमें जन-जीवन का प्रेम छलका पड़ता है। बरसात के दिनों में वीर-रस से परिपूर्ण आल्हा को गाने वाले अल्हैत अपनी ओजस्विनी वाणी से जन-मन का अनुरञ्जन

किया करते हैं। इन लम्बे कथानक वाले गीतों—गाथाओं को सुनकर जनता के मन में वीर-रस का संचार होने लगता है, जोश में आकर उनकी भुजाएँ फड़कने लगती हैं। परन्तु लोक-साहित्य का विस्तार यहीं तक सीमित नहीं है। स्नेहमयी माता अपने दुधमुँहे बच्चे को पालने के गीत गा-गाकर उसे सुलाती है। अपनी प्रत्येक थपकी के साथ वह गीत की किसी-न-किसी कड़ी को गाती हुई निद्रा-देवी का आवाहन करती है। बालक जब आपस में खेल खेलते हैं तब वे भी विभिन्न खेलों में भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत गाते हैं। इन्हीं सब लोक-गीतों, गाथाओं और कथाओं को लोक-साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है।

एक समय था जब संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था। वह प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसका आचार-विचार, रहन-सहन सब सरल, सहज और स्वाभाविक था। वह आडम्बर या दिखावा से बहुत दूर रहता था। उसके कोश में 'कृत्रिमता' शब्द का नितान्त अभाव था। वह स्वाभाविकता की गोद में पला हुआ जीव था। वह स्वच्छन्दता के स्वतन्त्र वातावरण में विचरण करता था। उसके समस्त कार्य—उठना-बैठना, बोलना-चालना, हँसना-रोना स्वाभाविकता से पगे रहते थे। चित्त के आह्लाद के निमित्त कविता की रचना उस समय भी होती थी और आज भी होती है। परन्तु दोनों युगों की कविताओं में आकाश-पाताल का अन्तर है। उस समय की इस अकृत्रिम कविता का जो अंश अवशिष्ट रह गया है वही आज हमें लोक-काव्य अथवा लोक-गीत के रूप में उपलब्ध होता है।

भारतवासियों का जीवन सदा से संगीतमय रहा है। संसार में शायद ही कोई दूसरी जाति होगी जिसके जीवन पर संगीत का इतना प्रचुर प्रभाव पड़ा हो। प्रत्येक उत्सव, पर्व और त्यौहार के अवसर पर समयोचित गीत गाकर मनोविनोद करना हमारी भारतीय दिनचर्या का एक आवश्यक अंग रहा है और अब भी है। पुत्र-जन्म, यज्ञोपवीत,

विवाह, द्विरागमन आदि समस्त उत्सवों के अवसर पर स्त्रियाँ अपने कोमल कल-कण्ठों से रमणीय गीत गाकर उपस्थित जन-मण्डली का पर्याप्त मनोरंजन किया करती हैं।

भारतीय लोक-कथाओं की परम्परा भी कुछ कम प्राचीन नहीं है। भारतीय कथाओं का संसार-विशेषकर पाश्चात्य देशों के कथा-साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा है, यह बात विद्वानों से अविदित नहीं है। भारत सम्भवतः संसार के सब देशों में कथा-साहित्य में सबसे अधिक समृद्धि-शाली देश रहा है। संस्कृत भाषा में लिखा गया 'कथा-सरित्सागर' सचमुच ही कथाओं के संग्रह का समुद्र है। लोक-गाथाओं के विषय में भी यही बात समझनी चाहिए।

हमारी ऐसी दृढ़ धारणा है कि भारतवर्ष लोक-साहित्य की सम्पत्ति में संसार के अन्य देशों से सबसे अधिक धनवान है। इस देश में आर्य तथा द्रविड़ दो परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। आर्य भाषाओं में पंजाबी, हिन्दी, बिहारी, बँगला, असमिया, उड़िया, मराठी और गुजराती आदि भाषाएँ सम्मिलित हैं तथा द्रविड़ भाषाओं के अन्तर्गत तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाएँ हैं। इन सभी भाषाओं की अनेक बोलियाँ (dialects) हैं और इन बोलियों की अनेक उप-बोलियाँ (sub-dialects) हैं। इनमें से प्रत्येक उपबोली के अन्तर्गत हज़ारों तथा लाखों की संख्या में लोक-गीत, लोक-गाथाएँ तथा लोक-कथाएँ उपलब्ध होती हैं। उदाहरण के लिए केवल हिन्दी भाषा को ही लीजिए; इसमें प्रधानतया राजस्थानी, व्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी और छत्तीसगढ़ी बोलियाँ हैं। पुनः राजस्थानी की चार उपबोलियाँ—मारवाड़ी, ढूढ़ाडी, मालवी और मालती हैं। इसी प्रकार भोजपुरी की तीन प्रधान उपबोलियाँ हैं, जिनमें सहस्रों नहीं तो लाखों की संख्या में लोक-गीत, लोक-कथाएँ और लोक-गाथाएँ बिखरी पड़ी हैं। इन उपबोलियों में प्रचलित लोक-साहित्य का यदि संग्रह किया जाय तो महर्षि व्यास के महाभारत की भाँति 'लक्षश्लोकात्मक' अनेक ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं।

इस विपुलकाय तथा विशाल लोक-साहित्य का संग्रह करने के लिए एक नहीं, अनेक व्यासों की आवश्यकता होगी। इसके लिए संग्रह तथा अनुसन्धान-कर्ताओं की सम्भवतः एक महती सेना पर्याप्त हो।

किसी सुप्रसिद्ध मानव-वैज्ञानिक (एन्थ्रोपोलाजिस्ट) ने लिखा है कि इङ्गलैण्ड लोक-गाथाओं के क्षेत्र में अद्वितीय है। परन्तु यह कथन समुचित नहीं प्रतीत होता। लोक-साहित्य की सम्पत्ति में भारतवर्ष जितना समृद्ध है उतना सम्भवतः संसार का अन्य कोई देश नहीं। उपर्युक्त भाषाओं, उनकी बोलियों और उपबोलियों में जो लोक-साहित्य सुरक्षित है उसके अतिरिक्त भारत की वन्य तथा पर्वतीय जातियों में भी इस साहित्य की सत्ता प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। मध्य प्रदेश की गोंड, वैगा, अगेरिया, मुरिया और कमार आदि जंगली जातियों का; छोटा नागपुर की सन्थाल, मुण्डा, विरहोर, भुइया, खरिया और ओराँव जातियों का तथा असम राज्य की नागा, मिशनी, अबोर और कद्दारी आदि अर्ध-सभ्य जातियों का लोक-साहित्य अनन्त है। इस प्रकार भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं और जातियों में सुरक्षित लोक-साहित्य की समता संसार के किसी भी देश का लोक-साहित्य नहीं कर सकता। सचमुच ही यह लोक-साहित्य विराट् पुरुष के समान प्रचुर और अनन्त है।

भोजपुरी साहित्य प्रधानतया लोक-साहित्य ही है। अतः इसमें लोक-गीतों, लोक-गाथाओं तथा लोक-कथाओं की संख्या बहुत अधिक है। कुछ सन्तों ने भी इस भाषा को अपनी काव्य-कला का माध्यम बनाया है। आधुनिक कवि अपनी रचनाओं से इसके भाण्डार को भर रहे हैं। भोजपुरी साहित्य का वर्णन करने के पहले भोजपुरी भाषा का सामान्य परिचय देना अनुचित न होगा। अतः अगले अध्याय में इसीका वर्णन किया जाता है।

: २ :

भोजपुरी भाषा

भारतीय भाषाओं में भोजपुरी का स्थान

भाषा-शास्त्र के विद्वानों ने समस्त भारतीय भाषाओं का अनुशीलन करके कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर इनको अन्तरंग तथा बहिरंग भागों में विभक्त किया है। अन्तरंग भाषा की (१) पश्चिमी शाखा और (२) उत्तरी शाखा नामक दो प्रधान शाखाएँ हैं। पश्चिमी शाखा के अन्तर्गत पश्चिमी हिन्दी (व्रज आदि) राजस्थानी, गुजराती और पंजाबी आदि भाषाएँ हैं और उत्तरी शाखा में पश्चिमी पहाड़ी, मध्य-पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी आदि भाषाएँ परिगणित हैं। बहिरंग भाषाओं की तीन प्रधान शाखाएँ हैं—(१) उत्तर-पश्चिमी शाखा—जिसमें काश्मीरी, कोहिस्तानी, पश्चिमी पंजाबी और सिन्धी भाषा आती है। (२) दक्षिणी शाखा—जिसमें मराठी भाषा की गणना है। बहिरंग भाषाओं की तीसरी शाखा है। (३) पूर्वी शाखा। इसके अन्तर्गत उड़िया, बंगला, असमिया और बिहारी भाषाएँ आती हैं। इस अन्तिम भाषा अर्थात् बिहारी की तीन बोलियाँ (डाइलेक्ट्स) प्रसिद्ध हैं—(१) मैथिली, (२) मगही और (३) भोजपुरी। इस प्रकार भोजपुरी बहिरंग भाषाओं

की पूर्वी शाखा के अन्तर्गत बिहारी भाषा की एक बोली है।[1] यह क्षेत्र-विस्तार तथा इसके बोलने वालों की संख्या के आधार पर अपनी बहनों—मैथिली और मगही—से बड़ी है। अपनी प्रसिद्धि तथा महत्ता के कारण इसने भाषा की प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लिया है।

भोजपुरी भारत की आर्य-भाषाओं में पूर्वी अथवा मागध श्रेणी (मागधन ग्रुप) की भाषाओं में सबसे पश्चिमी भाषा है। डॉ० ग्रियर्सन ने इन मागध-श्रेणी की भाषाओं को 'बिहारी' नाम से अभिहित किया है। बिहारी भाषा से उक्त विद्वान् का अभिप्राय केवल उस भाषा से है, जिसके अन्तर्गत तीन बोलियाँ—(१) मैथिली, (२) मगही और (३) भोजपुरी—प्रचलित हैं। यद्यपि भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह मत ठीक है, परन्तु मैथिली और मगही बोलियों में बहुत अन्तर है। इसी प्रकार भोजपुरी की भी स्वतन्त्र सत्ता है तथा उपर्युक्त बोलियों से इसका कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं है।

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने मागध भाषाओं का वर्गीकरण तीन विभागों में किया है।[2] उनके मतानुसार भोजपुरी का सम्बन्ध पश्चिमी मागध भाषाओं के समुदाय (ग्रुप) से है। मैथिली और मगही का सम्बन्ध केन्द्रीय मागध से, और बंगला, असमिया तथा उड़िया भाषाओं का सम्बन्ध पूर्वी मागध समुदाय से है। इस प्रकार यह स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि बंगला, असमिया और उड़िया भाषाएँ भोजपुरी भाषा की चचेरी बहनें हैं, जब कि मैथिली और मगही इसकी सगी बहनें होने का गौरव प्राप्त करती हैं।

क्षेत्र-विस्तार

उपर्युक्त तीनों बोलियों में विस्तार की दृष्टि से विचार करने पर भोजपुरी का स्थान सर्वश्रेष्ठ दिखाई पड़ता है। इस भाषा का विस्तार-

१. डॉ० श्यामसुन्दरदास—'भाषा विज्ञान', पृष्ठ १५०-५१।

२. 'ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेण्ट ऑफ बङ्गाली लैंग्वेज', भाग १।

क्षेत्र बहुत बड़ा है। उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर मध्य-प्रदेश की सरगुजा रियासत[1] तक इसका विस्तार है। बिहार राज्य (प्रान्त) में यह शाहाबाद, सारन, चम्पारन, राँची, पालामऊ जिले का कुछ भाग और मुजफ्फरपुर जिले के उत्तरी-पश्चिमी भाग में प्रचलित है। यह उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिलों—बनारस, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, बस्ती—में तथा जौनपुर और आजमगढ़ जिलों के आधे से अधिक भागों में फैली हुई है।

भोजपुरी नामकरण का कारण

भोजपुरी भाषा का नामकरण बिहार राज्य के शाहाबाद जिले में स्थित 'भोजपुर' नामक गाँव के नाम पर हुआ है। शाहाबाद जिले में, बक्सर सब-डिवीजन में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है। इसी परगने में 'नवका भोजपुर' और 'पुरनका भोजपुर' नाम के दो छोटे-छोटे गाँव हैं। ये गाँव डुमराँव नगर से दो-तीन मील उत्तर में गंगा के निकट बसे हैं। ये दोनों गाँव आस-पास हैं और 'भोजपुर' नामक प्राचीन नगर के ही स्थान पर स्थित हैं। इसी प्राचीन 'भोजपुर' नगर के नाम से इस भाषा का नाम 'भोजपुरी' पड़ गया।[2] प्राचीन काल में भोजपुर बड़ा समृद्धिशाली नगर था। यह उज्जैन-वंशी पराक्रमी राजपूत राजाओं की राजधानी था। इस वंश के प्रतिनिधि डुमराँव राज्य के राजा आज भी विद्यमान हैं।

डॉ० बुकानन ने सन् १८१२ ई० में शाहाबाद जिले में परिभ्रमण किया था। उसने अपने यात्रा-विवरण में लिखा है कि उज्जैन-वंशी राजपूतों ने यहाँ के मूल निवासियों को परास्त करके अपना राज्य स्थापित किया था। इन उज्जैनी राजपूतों की उत्पत्ति मालवा के सुप्रसिद्ध राजा

१. जिसका अब विलयन हो गया है।

२. दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह—'भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस', भूमिका, पृ० १।

भोज से मानी जाती है। ब्लाखमैन ने अपने 'आईने अकबरी' के अनुवाद में भोजपुर के सम्बन्ध में अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है। अपने एक लेख में भी उसने इसकी चर्चा की है।[1] अन्य अनेक उल्लेखों से यह पता चलता है कि प्राचीन काल में 'भोजपुर' एक महत्त्वपूर्ण स्थान था, जिसे मालवा के उज्जैन-वंशी राजाओं की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। ये उज्जैनी राजा मालवा से यहाँ आए थे। पश्चिमी विहार में इनकी सत्ता सन् १८५७ ई० तक अक्षुण्ण थी। इसी समय वीराग्रणी कुँवरसिंह ने अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया था। इस युद्ध में कुँवरसिंह पराजित हुए और इस प्रकार भोजपुर की प्राचीन महत्ता विनष्ट हो गई।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट पता चलता है कि 'भोजपुर' स्थान का नाम उन उज्जैनी राजाओं के नाम के कारण पड़ा, जो उज्जैन (मालवा) से आकर यहाँ बस गए थे। क्योंकि ये लोग मालवा के सुप्रसिद्ध संस्कृत-विद्वान् तथा दानवीर राजा भोजराज या भोज के वंशज थे, अतएव ये लोग अपने नाम के साथ भोज की उपाधि को धारण करना अपना गौरव समझते थे। इन्हीं लोगों ने इस नगर को बसाया था। अतः इसका नाम 'भोज+पुर' अर्थात् भोज उपाधिधारी राजाओं का पुर या नगर पड़ गया।

भोजपुरी भाषा का व्यावहारिक प्रयोग

भोजपुरी एक जीवन्त भाषा है। जिस प्रकार इसके बोलने वालों में शौर्य, उत्साह और जीवट पाए जाते हैं, उसी प्रकार इस भाषा में भी जीवनी शक्ति है। यद्यपि भोजपुरी प्रदेश में बालकों की प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा खड़ी बोली हिन्दी में दी जाती है, फिर भी अपने दैनिक व्यवहार में यहाँ के निवासी इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। उनके हृदय

१. **'जनरल ऑफ़ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल', सन् १८७१, पृ० ३—१२६।**

में इसके प्रति अत्यधिक प्रतिष्ठा और प्रेम है। भोजपुरी प्रदेश के प्रत्येक भाग में वहाँ के निवासी राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक सभी प्रकार के विषयों की मीमांसा अपनी प्रिय मातृभाषा में ही करते हैं। कला, वार्त्ता तथा उपदेश इसी भाषा में दिए जाते हैं। सभी मंगल-कृत्यों के अवसर पर स्त्रियाँ भोजपुरी में ही गीत गाती हैं। विवाह के अवसर पर जनता के मनोरंजन के लिए जो 'बिदेसिया' नाटक खेला जाता है, उसकी भाषा भी भोजपुरी ही होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस भाषा का प्रयोग दैनिक व्यवहार में प्रचुरता के साथ किया जाता है।

भोजपुरी भाषा का अध्ययन

इस देश में आधुनिक इण्डो-आर्यन भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास कुछ बहुत पुराना नहीं है। आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व डॉ० सर रामकृष्ण भाण्डारकर और डॉ० बीम्स के अनुसन्धानों से इसका श्रीगणेश होता है। भोजपुरी के सम्बन्ध में सर्वप्रथम अनुसन्धानकर्ता डॉ० बीम्स थे। इन्होंने 'नोट्स ऑन दि भोजपुरी डाइलेक्ट ऑफ़ हिन्दी स्पोकेन इन वेस्टर्न बिहार' शीर्षक अपने एक लेख में इसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया था।[1] जे० आर० रीड नामक विद्वान् ने भी अपने 'नोट्स ऑन दि डाइलेक्ट करेण्ट इन आजमगढ़' शीर्षक लेख में भोजपुरी भाषा के व्याकरण पर प्रचुर प्रकाश डाला था।[2] सन् १८८० ई० में डॉ० ए० एफ़० रुडाल्फ हार्नली ने अपना सुप्रसिद्ध व्याकरण-ग्रन्थ प्रकाशित किया, जिसमें पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत भोजपुरी व्याकरण की बहुमूल्य सामग्री उपस्थित की गई है।[3] डॉ० हार्नली ने बनारस की पश्चिमी भोजपुरी को पूर्वी हिन्दी का नाम दिया है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से

१. जनरल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ३ (१८६८ ई०), पृ० ४८३–५०८।

२. सेटेलमेण्ट रिपोर्ट फॉर १८७७, परिशिष्ट नं० २।

३. कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ दि गौड़ियन लैंग्वेजेज़।

हार्नली के इस ग्रन्थ 'कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ़ दि गौडियन लैंग्वेजेज' का महत्त्व बहुत अधिक है, क्योंकि यह ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक दोनों शैलियों को दृष्टि में रखकर लिखा गया है।

सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डॉ० सर जार्ज ग्रियर्सन ने भोजपुरी भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में बड़ा ही शोधपूर्ण कार्य किया है। भोजपुरी साहित्य-सम्बन्धी इनके कार्यों का उल्लेख यथास्थान किया जायगा। इस विद्वान् ने भोजपुरी-भाषा के सम्बन्ध में भी प्रशंसनीय कार्य किया है। इन्होंने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया' नामक विशालकाय ग्रन्थ का सम्पादन किया है, जो कई भागों में प्रकाशित हुआ है।[1] इसमें भारतवर्ष की सभी भाषाओं तथा उनकी विभिन्न बोलियों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। इसी ग्रन्थ के भाग ५ खण्ड २ में इन्होंने भोजपुरी भाषा-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री उपस्थित की है। इस ग्रन्थ में भोजपुरी नामकरण का कारण, क्षेत्र-विस्तार, भाषाभाषियों की संख्या तथा इसकी विभिन्न बोलियों और उनके व्याकरण आदि विषयों का विवेचन बड़ी प्रामाणिक रीति से किया गया है। साथ ही इस भाषा की विभिन्न बोलियों के उदाहरण उनकी विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए दिये गए हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में भोजपुरी भाषा-सम्बन्धी बहुत-सी सामग्री उपलब्ध है। डॉ० ग्रियर्सन की दूसरी पुस्तक है 'सेवेन ग्रामर्स ऑफ़ दि डाइलेक्ट्स एण्ड सब-डायलेक्ट्स ऑफ़ दि बिहारी लैंग्वेज'। इस ग्रन्थ में भोजपुरी भाषा का व्याकरण विस्तृत रूप से दिया गया है। इन्होंने अपने 'बिहार पीजेण्ट लाइफ़' नामक तीसरे ग्रन्थ में विभिन्न ग्रामीण वस्तुओं के नाम के रूप में हज़ारों भोजपुरी शब्दों का संग्रह किया है। फ़ैलेन की 'न्यू हिन्दुस्तानी-इङ्गलिश डिक्शनरी' (जो सन् १८७६ ई० में प्रकाशित हुई थी) में भोजपुरी के शब्दों, खेती के गीतों, मुहावरों और कहावतों का अच्छा संग्रह उपलब्ध होता है। परन्तु इन विद्वानों का कार्य प्रशंसनीय होने पर भी सर्वाङ्गीण नहीं है।

१. भारत सरकार द्वारा प्रकाशित।

भोजपुरी भाषा-सम्बन्धी सर्वाङ्गीण गवेषणा करने का श्रेय प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्रोफेसर डॉ० उदयनारायण जी तिवारी एम० ए०, डि० लिट्० को प्राप्त है। इन्होंने इस भाषा के समस्त अंगों पर अपनी 'ओरिजन एण्ड डेवलेपमेण्ट आफ़ भोजपुरी' शीर्षक थीसिस में वैज्ञानिक पद्धति से विवेचन प्रस्तुत किया है।[1] डॉ० तिवारी का भोजपुरी भाषा-सम्बन्धी दूसरा ग्रन्थ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित हो रहा है, जिसमें उन्होंने भोजपुरी भाषा तथा इसके व्याकरण की विद्वत्ता-पूर्ण मीमांसा प्रस्तुत की है तथा मैथिली और मगही से इसकी तुलना भी की है।

इस पुस्तक के लेखक ने भी अपनी 'भोजपुरी ग्राम-गीत' (भाग १) पुस्तक के अन्त में कुछ भोजपुरी शब्दों का संग्रह उपस्थित किया है तथा 'भोजपुरी ग्राम-गीत' (भाग २) के अन्त में दी गई टिप्पणियों में मैंने भाषा-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक शब्दों की निरुक्ति भी बतलाई है।[2] श्री लालजी सिंह ने प्रयाग से प्रकाशित 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में भोजपुरी भाषा का संक्षिप्त व्याकरण प्रस्तुत किया है।[3]

भोजपुरी भाषा का विस्तार

भोजपुरी भाषा का विस्तार लगभग पचास हजार वर्गमील में है। इसकी सीमा किसी एक प्रान्त की राजनीतिक सीमा से सम्बद्ध नहीं है। भोजपुरी भाषा के प्रधान-क्षेत्र उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिले और बिहार-राज्य के पश्चिमी जिले हैं। परन्तु इन जिलों के अतिरिक्त भी यह भाषा कहीं-कहीं बोली जाती है।

---

१. यह थीसिस अभी अप्रकाशित है।
२. ये दोनों पुस्तकें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हो चुकी हैं।
३. 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका भाग १६, अंक २, पृ० १२०-४४।

गंगा नदी से उत्तर में इस भाषा की सीमा मुजफ्फरपुर जिले के पश्चिमी भाग की मैथिली है। फिर इस नदी के दक्षिण में इसकी सीमा गया और हजारीबाग जिले की मगही बोली से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमान्त-रेखा दक्षिण-पूर्व की ओर हज़ारीबाग की मगही के उत्तर-उत्तर घूमकर सम्पूर्ण राँची पठार और पलामू एवं राँची ज़िले के अधिकांश भागों में फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंहभूमि की उड़िया, गंगपुर स्टेट की तद्देशीय भाषा से परिसीमित होती है। वहाँ से भोजपुरी की सीमा भूतपूर्व जसपुर रियासत के मध्य से होकर राँची पठार की सरहद के साथ-साथ दक्षिण की ओर जाती है जिससे सरगुजा और पश्चिमी जसपुर की छत्तीसगढ़ी बोली से इसका विभेद होता है। पलामू जिले के पश्चिमी प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा उत्तर-प्रदेश के मिर्ज़ापुर जिले में दक्षिणी भाग में फैलकर गंगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गंगा के बहाव के साथ-साथ पूर्व की ओर घूमती है और बनारस के निकट पहुँचकर गंगा पार कर जाती है। इस प्रकार मिर्ज़ापुर जिले के गांगेय प्रदेश के केवल अल्प भाग में ही इसका प्रचार है। मिर्जापुर के दक्षिण में छत्तीसगढ़ी से इसकी भेंट होती है परन्तु उस जिले के पश्चिमी भाग के साथ-साथ उत्तर की ओर घूमने पर इसकी सीमा पश्चिम में पहले बघेलखण्ड की बघेली और फिर अवध की अवधी से जा लगती है।

गंगा को पार करके भोजपुरी की सीमा फैजाबाद के जिले में, सरयू-नदी के निकट टाँडा तक सीधे उत्तर की ओर चली जाती है। इस प्रकार इसका विस्तार बनारस जिले की पश्चिमी सीमा के साथ-साथ, जौनपुर जिले के बीचों-बीच और आज़मगढ़ जिले के पश्चिमीय भाग के साथ-साथ फैजाबाद जिले के आर-पार तक फैला हुआ है। फैजाबाद जिले की टाँडा तहसील में इसका विस्तार सरयू नदी के साथ-साथ पश्चिम की ओर घूमता है और तब उत्तर की ओर हिमालय के नीचे की श्रेणियों तक बस्ती जिले को अपने में शामिल कर लेता है। इस विस्तृत भू-भाग

के अतिरिक्त भोजपुरी, थारू नामक जंगली जातियों द्वारा—जो गोंडा, तथा बहराइच के जिलों में बसती हैं—मातृभाषा के रूप में व्यवहृत की जाती है।[1]

भोजपुरी का अन्य बिहारी भाषाओं से पार्थक्य

यह पहले कहा जा चुका है कि बिहारी भाषा के अन्तर्गत तीन भाषाओं का समावेश होता है (१) मैथिली, (२) मगही और (३) भोजपुरी। परन्तु प्रथम दोनों भाषाओं मैथिली और मगही—का आपस में इतना अधिक साम्य है और भोजपुरी से इतना अधिक वैषम्य है कि बिहारी भाषा को दो भागों में ही विभक्त करना अधिक उचित प्रतीत होता है—(१) पूर्वी-बिहारी—जो मैथिली और मगही के भेद से द्विविध मानी जाती है और (२) पश्चिमी बिहारी अर्थात् भोजपुरी। इन दोनों में उच्चारण सम्बन्धी तथा रूपगत अनेक भेद दिखाई पड़ते हैं। मैथिली में विशेषत: और मगही में सामान्यत: 'अकार' का उच्चारण बँगला के उच्चारण से मिलता-जुलता है, जिसमें 'अ' की ध्वनि ओकार के समान मुँह को गोलाकार बनाकर की जाती है। परन्तु भोजपुरी में अकार का उच्चारण पश्चिमी हिन्दी के समान नितान्त सुस्पष्ट 'अकार' ही होता है। भोजपुरी में 'अकार' की एक विचित्र ध्वनि है जो 'हवे' (है) शब्द में वर्तमान है। यह कुछ विचित्र ध्वनि है और प्राय: 'औकार' के उच्चारण के समान मुँह को अधिक गोल बनाने पर उच्चरित होती है।

---

१. भोजपुरी भाषा के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—
(क) डॉ० ग्रियर्सन—लि० स० ह० भाग ५, खण्ड २।
(ख) डॉ० उदयनारायण तिवारी—'दि ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट ऑफ भोजपुरी', (अप्रकाशित) पृ० २४-२६।
भोजपुरी के क्षेत्र-विस्तार के सम्बन्ध में डॉ० तिवारी का मत डॉ० ग्रियर्सन के मत से थोड़ा भिन्न है।

मैथिली और मगही में आदर-सूचन के लिए मध्यम पुरुष में 'अपने' शब्द का प्रयोग किया जाता है। परन्तु भोजपुरी में इसके लिए 'रउरे' शब्द व्यवहृत होता है। यह 'रउरे' तथा 'राउर' (आपका) शब्दों का प्रयोग भोजपुरी की ओर स्पष्ट संकेत करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने **'मोहि लागत दुख रउरे लागा'** और **'जो राउर अनुशासन पाऊँ'** आदि चौपाइयों में इन्हीं भोजपुरी शब्दों का प्रयोग किया है। सहायक क्रिया के रूप में या सत्तार्थक धातु के लिए मैथिली में 'छुई' या 'अछि' का प्रयोग किया जाता है। इसी अर्थ में मगही में 'हई' प्रयुक्त होता है परन्तु भोजपुरी में 'बाटी', 'बाड़ी' या 'बानी' व्यवहृत होता है। भोजपुरी के इस 'बाटे' या 'बाटी' का उपर्युक्त दोनों बोलियों में नितान्त अभाव है। 'हइ' (है) क्रिया—जो प्रायः तीनों बोलियों में समान रूप से पाई जाती है—का रूप भिन्न-भिन्न कालों में भोजपुरी में इतना विभिन्न होता है कि इन्हें यह पहचानना भी कठिन है कि ये एक ही क्रिया के विभिन्न रूप हैं। प्रधान क्रिया के रूप में, भोजपुरी में वर्तमान काल में 'देखी-ला' (मैं देखता हूँ) का प्रयोग पाया जाता है, जो अपनी विशेषता रखता है। ऐसा प्रयोग अन्य बोलियों में उपलब्ध नहीं होता।

इन भाषाओं के संज्ञाओं के रूपों में भी भेद दिखाई पड़ता है। भोजपुरी में षष्ठी कारक का प्रत्यय 'के' है, परन्तु मैथिली और मगही में इसके लिए 'क', 'कर' या 'केर' का प्रयोग किया जाता है। भोजपुरी का व्याकरण यहाँ के निवासियों के जीवन तथा स्वभाव के अनुसार ही व्यावहारिक तथा सीधा है। यह मैथिली भाषा के व्याकरण के अनुसार जटिल तथा कठिन नहीं है।

भोजपुरी भाषा की विभिन्न बोलियाँ

भोजपुरी भाषा की तीन प्रधान बोलियाँ मानी गई हैं—(१) आदर्श भोजपुरी, (२) पश्चिमी भोजपुरी और (३) नागपुरिया। इसके अतिरिक्त इसकी दो अन्य उपबोलियाँ (सब डायलेक्ट्स) भी हैं, जो

'मधेली' और 'थारू' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन बोलियों का वर्णन क्रमशः प्रस्तुत किया जाता है।

इन बोलियों का विस्तार-क्षेत्र

आदर्श भोजपुरी प्रधानतया शाहाबाद, बलिया और गाज़ीपुर जिले के पूर्वी भाग तथा घाघरा (सरयू) एवं गण्डक के दोआब में बोली जाती है। यह एक लम्बे भू-भाग में फैली हुई है। पश्चिमी भोजपुरी—जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है—आज़मगढ़, जौनपुर, बनारस, गाज़ीपुर का पश्चिमी भाग तथा मिर्ज़ापुर जिले के उस दक्षिणी भाग में बोली जाती है जो गंगा से सम्बद्ध है। यह आदर्श भोजपुरी के पश्चिमी भाग में व्यवहृत होती है। नागपुरिया छोटा नागपुर में बोली जाती है। मधेसी चम्पारन जिले में प्रयुक्त होती है और 'थारू' नामक बोली गोंडा और बहराइच जिलों के उस भाग में बोली जाती है जो नेपाल की तराई के निकट हैं। इस प्रकार भोजपुरी की विभिन्न बोलियों तथा उपबोलियों का विस्तार बहुत बड़ा है।

आदर्श भोजपुरी

आदर्श भोजपुरी शाहाबाद जिले में स्थित 'भोजपुर' गाँव के चारों ओर बोली जाती है। अतः इस स्थान के आस-पास बोली जाने वाली भाषा का आदर्श माना जाना स्वाभाविक ही है। आदर्श भोजपुरी एक विस्तृत भू-भाग में फैली हुई है। इसमें अनेक स्थानीय विशेषताएँ पाई जाती हैं। इसमें भोजपुरी की अन्य बोलियों से सबसे प्रधान एवं स्पष्ट प्रतीयमान पार्थक्य यह है कि जहाँ शाहाबाद, बलिया और गाज़ीपुर आदि जिलों में सहायक क्रिया में 'ड़' का प्रयोग किया जाता है वहाँ उत्तरी जिलों में 'ट' का व्यवहार होता है। इस प्रकार उत्तरी आदर्श भोजपुरी में जहाँ 'बाटे' का प्रयोग किया जाता है वहाँ दक्षिणी आदर्श भोजपुरी में 'बाड़े' प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए बलिया की आदर्श भोजपुरी में हम

कहते हैं—'मोहन घर में बाड़े'। परन्तु गोरखपुर की भोजपुरी में 'मोहन घर में बाटे' कहा जाता है। बिहार-राज्य के सारन (छपरा) जिले के उत्तर और मध्य में क्रिया के भूतकाल का एक विचित्र रूप पाया जाता है जिसमें 'ल' के स्थान पर 'उ' जोड़ा जाता है। परन्तु यह बात अन्यत्र नहीं पाई जाती। उत्तरी गोरखपुर तथा शाहाबाद की भाषाओं में अन्तर अवश्य है, परन्तु विशेष नहीं। पश्चिमी गोरखपुर और बस्ती जिले की भाषा में आदर्श भोजपुरी से थोड़ा अन्तर अवश्य है किंबहुना, पूर्वी गोरखपुर—आधुनिक देवरिया जिला—और पश्चिमी गोरखपुर की भाषा में भी अन्तर है। इसका भेद वहाँ की बोली सुनने पर तत्काल ही ज्ञात हो सकता है। पूर्वी गोरखपुर की भाषा को 'गोरखपुरिया' कहते हैं और पश्चिमी गोरखपुर तथा बस्ती जिले की भाषा को 'सरवरिया' नाम दिया गया है।

'सरवरिया' शब्द 'सरुवार' या 'सरुआर' शब्द से निकला हुआ है जो 'सरयूपार' का अपभ्रंश है। सरयूपार शब्द का अर्थ है वह प्रदेश, जो सरयू अर्थात् घाघरा के उस पार हो। इस प्रकार इस प्रदेश के अन्तर्गत बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर, देवरिया एवं सारन—ये सभी जिले आते हैं। परन्तु स्थानीय परम्परा के अनुसार आजकल 'सरूआर' उसी प्रदेश को कहते हैं जो फैज़ाबाद जिले में स्थित अयोध्या से लेकर देवरिया जिले के मझौली राज्य तक फैला हुआ है।

भोजपुरी भाषा की 'सरवरिया' बोली सारे बस्ती जिले में और गोरखपुर जिले के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। 'सरवरिया' तथा 'गोरखपुरिया' बोलियों में विशेषतः संज्ञा शब्दों के प्रयोग में भिन्नता पाई जाती है।

उत्तर प्रदेश के बलिया तथा बिहार के सारन (छपरा)—इन दोनों जिलों में आदर्श भोजपुरी बोली जाती है परन्तु कुछ शब्दों के उच्चारण में दोनों में अन्तर उपलब्ध होता है। बलिया या शाहाबाद के लोग 'ड़' का उच्चारण शुद्ध रूप में 'ड़' ही करते हैं। परन्तु सारन जिले के

निवासी 'ड़' का उच्चारण 'र' करते हैं। उदाहरण के लिए जहाँ बलिया जिले के रहने वाले 'घोड़ा गाड़ी आवत बा' कहते हैं वहाँ छपरहिया लोग 'घोरा-गारी आवत बा' बोलते हैं। इस प्रकार आदर्श भोजपुरी में भी स्थान विशेष के कारण थोड़ा-बहुत अन्तर दिखाई पड़ता है। बलिया जिले में प्रचलित आदर्श भोजपुरी का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है, जिसे ध्यानपूर्वक पढ़ने से इस बोली की विशेषताएँ स्पष्ट रूप से ज्ञात हो सकती हैं :[1]

"कपिलदेव आजु हम तोहराके ढेर दिन पर देखत बानीं। अतना दिन तूं काहां रहला हा। जब तब हम तोहरा बारे में तोहरा गाँव के लोगन से पूछत रहली हां, मगर केहू हाल साफ ना बतावत रहल हा। अब कह तोहरा घर के सभ बेकति अच्छी तरे बानूं?

जी जोध भइया तूं का पूछत बाड़। जब हमरा हाल के सुनब त तहरो दुःख बेआपी ओ आँखिन में से लोर गिरावे लगब। जब हम एठीं से घरे गइलीं तब से गिरहती के काम में बझली। दोसर केहू हमरा घर में अहसन नइखे जेकरा से हमके एको लेहजा के आराम मिली। काहें से कि हमरा बाप आँखिये जबाब दे दिहलिस ओ हमरा जेठ जना भाई हमरा पहुँचला का पहिले ही परदेस चलि गइले। अवर तबसे एको चिठियो ना भेजले हा। हमार काकाजी अपना लरिका-बाला समेत अलगे रहें ले। एही सब ओजह से हम राति-दिन फिकिरि ओ तरदुत से पिसाइल रहीले। महराज के तहसीलदार मालगुजारी खातिर दुइ पियादा तनात कइले बाड़े। मामा से रुपया मंगली त उ साफे इनकार कइले। खीसा ह कि—'घर के मारल बन में गइलीं

बन में लागल आगि।
बन बेचारा क्या करे
जब करम में लागल आगि।।"

---

१. ग्रियर्सन—'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया', भाग ५, खण्ड २, पृ० २१०।

पश्चिमी भोजपुरी

पश्चिमी भोजपुरी फ़ैज़ाबाद, जौनपुर, आज़मगढ़, बनारस, गाज़ीपुर जिले के पश्चिमी भाग और मिर्जापुर जिले के मध्य भाग में बोली जाती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पश्चिमी भोजपुरी इण्डो-आर्यन भाषा-परिवार के पूर्वी समुदाय की सबसे पश्चिमी सीमान्त बोली है, जो अवधी आदि से कुछ समानता रखती है।[1] पश्चिमी भोजपुरी के व्याकरण का विस्तृत वर्णन जे० आर० रीड ने प्रस्तुत किया है, परन्तु यह बहुमूल्य सामग्री कठिनाई से उपलब्ध सेटेलमेण्ट (बन्दोबस्त) रिपोर्ट की फ़ाइलों में दबी पड़ी है।[2] डॉ० हार्नली ने अपने सुप्रसिद्ध व्याकरण में 'पूर्वी हिन्दी' के नाम से इस बोली का प्रामाणिक तथा विद्वत्तापूर्ण व्याकरण लिखा है। इस प्रकार भोजपुरी की इस बोली के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है।[3]

आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी में अन्तर

आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी में बहुत अधिक अन्तर है। सम्भवतः आदर्श भोजपुरी का अन्य बोलियों से इतना अधिक पार्थक्य नहीं है जितना पश्चिमी भोजपुरी से। पश्चिमी भोजपुरी में करण-कारक के लिए क्रिया के आगे 'अन' प्रत्यय का प्रयोग दीख पड़ता है, जो आदर्श

---

१. Western Bhojpuri is, in fact, the most western outpost of the Eastern group of the Indo-Aryan Family of languages, and possesses some of the features of its cousins to its West.

'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया', भाग १, खण्ड २, पृष्ठ २४८।

२. जे० आर० रीड—रिपोर्ट ऑन दि सेटेलमेण्ट ऑपरेशन इन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ़ आज़मगढ़, परिशिष्ट २ तथा ३ (इलाहाबाद १८८१)।

३. ए० एफ० आर० हार्नली—ए कम्परेटिव ग्रामर ऑफ़ दि गौडियन लैंग्वेज़ेज (लण्डन १८८०)।

भोजपुरी में बिलकुल ही नहीं है। पश्चिमी भोजपुरी में आदर-सूचक के लिए 'तुँह' का प्रयोग होता है परन्तु आदर्श भोजपुरी में इसके लिए 'रउरा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। दोनों बोलियों में सहायक क्रिया के दो रूप पाए जाते हैं--बानी और हवीं। परन्तु पश्चिमी भोजपुरी में हवीं का रूप 'होईं' पाया जाता है।

उच्चारण की विशेषता में भी अनेक प्रभेद दृष्टिगोचर होते हैं। बलिया जिले में उत्तम पुरुष के रूपों के साथ कुछ अनुस्वार-सा मिला रहता है। अतः उसके उच्चारण के लिए नाक की सहायता अनिवार्य रूप से ली जाती है। परन्तु पश्चिमी भोजपुरी में अनुनासिक का नाम तक नहीं होता। बलिया जिले के लोग 'मैंने काम किया' इसके लिए 'हम काम कइलीं' ऐसा बोलते हैं, जो सानुनासिक प्रयोग है। परन्तु पश्चिमी भोजपुरी बोलने वाले बनारसी लोग कहेंगे 'हम काम कइली'। उच्चारण का यह भेद स्पष्ट रूप से प्रत्येक व्यक्ति को मालूम हो सकता है। अन्य पुरुष के बहुवचन के रूप में भी अन्तर पड़ता है।

संज्ञा के रूपों में भी एक विशेषता है। जहाँ आदर्श भोजपुरी में, सम्बन्धकारक में, 'के' का प्रयोग किया जाता है वहाँ पश्चिमी भोजपुरी में 'का' या 'कई' प्रयुक्त होता है। 'के' का परिवर्तित रूप तो 'का' बन जाता है परन्तु 'क' का 'के' होता है।

सम्प्रदान कारक का परसर्ग (प्रत्यय) इन दोनों बोलियों में भिन्न-भिन्न पाया जाता है। आदर्श भोजपुरी में सम्प्रदान कारक का प्रत्यय 'लागि' है, परन्तु बनारस की पश्चिमी भोजपुरी में इसके लिए 'के बदे' या 'वास्ते' का प्रयोग होता है। जहाँ आदर्श भोजपुरी में 'तोहरा **लागि** उड़बो अकास' बोलते हैं वहाँ बनारसी बोली में 'किनली है रजा लाल दुसाला तोरे **बदे**' कहा जाता है। इन दोनों उदाहरणों से यह पार्थक्य स्पष्ट प्रतीत हो जाता है। एक और उदाहरण लीजिए जिससे इन दोनों बोलियों का अन्तर लक्षित होता है :

आदर्श भोजपुरी [1]

तलवा झुरइले कँवल कुम्हलइले,
हंस रोयेला विरह वियोग।
रोवत बाड़ी सरवन के माता,
के काँवर ढ़ोइहे मोर ।।

पश्चिमी भोजपुरी [2]

हम खर मिटाव कैली हा रहिला चबाय के।
भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे।
अत्तर तू रोज मल के नहाइल कर रजा !
बीसन भरल धइल वा कराब तोरे बदे।
जानीला आज कल में झनाझन चली रजा !
लाठी, लोहागी, खंजर औ बिछुआ तोरे बदे ।।

पश्चिमी भोजपुरी में खड़ी बोली हिन्दी के समान विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलता रहता है। परन्तु आदर्श भोजपुरी में ऐसी बात नहीं पाई जाती।

इस प्रकार नागपुरिया, मधेसी, सरवरिया और थरुई आदि का परस्पर विभेद उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी का है। बलिया जिले की बोली तथा बनारस की बोली—जो दोनों की प्रतिनिधि हैं—में उच्चारण-सम्बन्धी तथा रूपगत इतनी विभिन्नता है कि एक बार सुनने पर ही भेद स्पष्ट मालूम पड़ जाता है। बलिया तथा आरा की आदर्श भोजपुरी का उदाहरण पीछे दिया जा चुका है। यहाँ बनारस जिले में बोली जाने वाली पश्चिमी भोजपुरी का नमूना प्रस्तुत किया जाता है :[3]

---

१. डा० कृष्णदेव उपाध्याय—'भोजपुरी लोक-गीत' भाग १
२. तेग़ अली—बदमाश दर्पण।
३. बनारसी बोली के विशेष विवरण के लिए देखिए वाचस्पति उपाध्याय —'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित 'बनारसी बोली' लेख।

"एक आदमी के दुइठे बेटवा रहलन। ओ में से छोटका अपने बाप से कहलस ए बाबू! जौन कुछ माल-असबाब हमारे बखरा में पड़े तौन हमके दे द:। तब ऊ आपन कमाई दूनो के बांट दिहलेस। थोरिकं दिनके बितले लहुर का बेटवा सब माल समेट के बड़ो दूर परदेस चल गएल और उहां सब धन लुचपन में फूंक दिहलेस। जब सब गवांय चुकल तब ओहि देस में बड़ा काल पड़ल।"

नागपुरिया

भोजपुरी की ही एक बोली नागपुरिया है, जो बिहार राज्य के छोटा नागपुर प्रदेश में बोली जाती है। इस पर छत्तीसगढ़ी बोली का प्रचुर प्रभाव पड़ा हुआ है। नागपुरिया को 'सदान' या 'सद्री' के नाम से भी पुकारते हैं। मुण्डा जाति के लोग इसे 'दिक्कु काजी' कहते हैं। यहाँ की प्रादेशिक भाषा के 'सद्री' शब्द का अर्थ 'बसे हुए लोगों' से है। अतः इस भाषा के 'सद्री' नामकरण का कारण यही जान पड़ता है कि यह एक स्थान पर बसे हुए लोगों की भाषा है, खानाबदोशों की नहीं।

रेवेरेण्ड इ० एच० ह्विटली ने इस बोली का बड़ा ही पाण्डित्य पूर्ण तथा प्रामाणिक व्याकरण लिखा है।[1] नागपुरिया बोली आदर्श भोज-पुरी से व्याकरण-सम्बन्धी अनेक बातों में पार्थक्य रखती है। जैसा कि पहले कहा गया है इस बोली पर छत्तीसगढ़ी का बहुत प्रभाव पड़ा है। नागपुरिया के अनेक संज्ञा-शब्द और धातु-रूप छत्तीसगढ़ी से लिये गए हैं। इस बोली में संज्ञा में निश्चयात्मकता लाने के लिए 'हर' जोड़ा जाता है तथा किसी संज्ञा का बहुवचन बनाने के लिए उसमें 'मन' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। परन्तु यह बात आदर्श भोजपुरी में नहीं पाई जाती। इसी प्रकार दोनों बोलियों के पारस्परिक विभेद के अनेक

---

१. रेवरेण्ड ई० एच० ह्विटली—नोट्स आन दि गनवारी डाइलेक्ट आफ लोहरदगा—छोटा नागपुर। कलकत्ता १८६६ ई०।

उदाहरण दिए जा सकते हैं।[१] अभी हाल ही में रोमन कैथोलिक पादरी श्री शान्ति पीटर 'नवरंगी' ने 'सदानी भाषा का व्याकरण तथा उसका साहित्य' नामक ग्रन्थ लिखा है जिसमें उन्होंने भोजपुरी की सदानी बोली के व्याकरण का वर्णन किया है। परन्तु अभी तक यह पुस्तक अप्रकाशित है।[२]

मधेसी

'मधेसी' शब्द संस्कृत के मध्य प्रदेश से निकला है जिसका अर्थ है बीच का देश। चूँकि यह बोली तिरहुत की मैथिली बोली और गोरखपुर की भोजपुरी के बीच वाले स्थानों में बोली जाती है अतः इसका नाम मधेसी—अर्थात् वह बोली, जो इन दोनों स्थानों के बीच में बोली जाय—पड़ गया है। मधेसी विहार राज्य के चम्पारन जिले में बोली जाती है। यह प्रायः कैथी अक्षरों में लिखी जाती है। मैथिली से इसमें अनेक बातों में समानता पाई जाती है।

थारू

नेपाल की तराई में जो 'थारू' जाति के लोग बसते हैं उनकी अपनी कोई भाषा नहीं है। जहाँ कहीं भी वे पाए जाते हैं वहाँ उन्होंने अपने आर्य पड़ोसियों की भाषा को पूर्ण रूप से अपना लिया है। ये थारू लोग उत्तर प्रदेश के बहराइच जिले से लेकर विहार राज्य के चम्पारन जिले तक पाये जाते हैं। ये लोग भोजपुरी की विकृत रूप वाली बोली को बोलते हैं। यह एक विशेष उल्लेखनीय बात है कि गोण्डा और बहराइच जिले के थारू लोग 'भोजपुरी' बोली बोलते हैं जब कि वहाँ की भाषा पूर्वी हिन्दी है। हागसन (Haegson) ने अपने एक लेख में इस बोली का बड़ा ही सुन्दर विवरण उपस्थित किया है।[३]

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया', भाग ५, खण्ड २, पृ० २७७-२८२०

२. डा० उदयनारायण तिवारी—'जनपद', खण्ड १, भाग १, पृ० ७७

३. हागसन—जरनल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग २६ (१८५७), पृ० ३१७

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि मधेसी और थारू भोजपुरी भाषा की उपबोलियाँ हैं। भोजपुरी की प्रधान बोलियाँ तीन ही—आदर्श भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी और नागपुरिया—हैं जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

: ३ :

सन्त साहित्य

भोजपुरी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना बड़ा ही कठिन कार्य है। इस साहित्य के सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यह प्रधानतया मौखिक रूप में ही पाया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि अनेक सन्त कवियों ने इस भाषा में काव्य-रचना की है, फिर भी इसका अधिकांश साहित्य लिखित की अपेक्षा मौखिक ही अधिक है। गाँवों में सोहर तथा जतसार गाती हुई स्त्रियों के कलकण्ठ में, बिरहा गाने वाले अहीरों के वीर स्वर में एवं सारंगी बजाकर अपनी उदर-पूर्ति की चिन्ता में संलग्न, भिक्षा का आयोजन करने वाले जोगियों तथा साधुओं के सरस एवं मधुर स्वरों में इस भाषा का साहित्य छिपा पड़ा है। भोजपुरी का यह मौखिक साहित्य इतना विस्तृत और विशाल है कि यदि इसका संग्रह किया जाय, तो अमूल्य साहित्य की सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

भोजपुरी में आजकल जो साहित्य उपलब्ध होता है, उसमें कुछ तो सन्तों द्वारा लिखित ग्रन्थ हैं, कुछ लोक-गीतों के संग्रह हैं और कुछ ऐसे छोटे-छोटे नाटक और गीत हैं, जिनमें जनता के दैनिक जीवन और समाज का चित्रण किया गया है। ऐसी पुस्तकों में 'बिदेसिया नाटक',

'मेला घुमनी' और 'गंगा-नहवनी' आदि मुख्य हैं। यद्यपि इन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का साहित्यिक दृष्टि से अधिक मूल्य नहीं है, फिर भी भोजपुरी भाषा के नमूने के रूप में इसका महत्त्व कुछ कम नहीं है।

कुछ विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि भोजपुरी में कुछ साहित्य है ही नहीं। डॉ० हार्नली ने अपने व्याकरण में लिखा है कि भोजपुरी में कोई उल्लेखनीय साहित्य नहीं पाया जाता।[1] भाषा-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है कि भोजपुरी का शायद ही कुछ साहित्य हो। भोजपुरी प्रान्त में सुप्रसिद्ध लोरिक का महाकाव्य और कुछ गीत इसमें हैं। इस भाषा में कुछ पुस्तकें भी छपी हैं।[2] इस साहित्य के सम्बन्ध में डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी का यह मत है कि कुछ लोक-गीतों और लोक-गाथाओं (बैलेड) के अतिरिक्त—जो बहुत ही सुन्दर हैं तथा देहातों में गाए जाते हैं—भोजपुरी में प्रयत्न पूर्वक किसी साहित्य की सृष्टि नहीं हुई है। इस बोली का सबसे प्राचीन नमूना सन्त कवि कबीर की रचनाओं में पाया जाता है, जो थोड़े-से पद्यों में ही सीमित है।[3]

---

१. हार्नली—ए कम्परेटिव ग्रामर ऑफ़ दि गौड़ियन लैंग्वेजेज।

२. Bhojpuri has hardly any indigenous literature. A few books have been printed in it. × × × Numerous songs are current over the Bhojpuri area, and the National epic of loric, which is also current in the Magahi dialect is everywhere known.

लि० स० इ० भाग ५, खण्ड २, पृ० ४६।

३. Barring the composition of a number of ballads and songs, which are beautiful specimen of folk-literature as any, and which still have a vigorous existence in the country side, there has been no conscious literary effort in Bhojpuria. The oldest specimens in this speech that we possess are probably a few poems written by the great religious reformer and mystic teacher of Northern India (Kabir) who flourished in the 15th Century.

चटर्जी—ओ० डे० बं० लै० भाग १।

प्रोफ़ेसर बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य ने इन्हीं उपर्युक्त विद्वानों का समर्थन करते हुए लिखा है कि, "इतना होने पर यह कम दुःख की बात नहीं है कि इसका साहित्य अभी तक समृद्ध रूप में नहीं दीख पड़ता। यह अभी तक लिखित अवस्था में भी नहीं है, बल्कि जीविका के लिए इधर-उधर भ्रमण करने वाले गायकों और अनपढ़ देहातियों की जिह्वा पर निवास कर रहा है।"[1] भोजपुरी भाषा के विद्वान् डॉ० उदयनारायण तिवारी का इस सम्बन्ध में यह कथन है कि :

"भोजपुरी में सबसे बड़ी कमी इसमें प्रकाशित उच्च श्रेणी के साहित्य का अभाव है।[2] × × × भोजपुरियों को अपनी भाषा के प्रति इतना अनुराग होने पर भी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस भाषा की श्रीवृद्धि नहीं हुई है और प्राचीन काल में अपनी बहनों—बंगाली, मैथिली एवं कोशली—के मुक़ाबले में इसमें साहित्य-रचना विशेष नहीं हुई है। इसका प्रधान कारण ब्राह्मण पण्डितों का मातृ-भाषा की उपेक्षा करके संस्कृत भाषा के प्रति विशेष अनुराग है।[3]

उपर्युक्त विद्वानों के कथनों में सत्य का अंश अधिक होने पर भी उनका मत सर्वथा समीचीन नहीं कहा जा सकता। भोजपुरी में अनेक सन्त तथा महात्माओं ने अपनी काव्य-रचना करके इसके भण्डार को भरा है। इनका परिचय तथा विशेष वर्णन यथास्थान किया जायगा। भोजपुरी में लोक-गीतों के अनेक संग्रह भी प्रकाशित हो गए हैं तथा अनेक नाटकों, कहानियों तथा सरस गीतों के संकलन हो चुके हैं। आज-कल भोजपुरी के नवयुवक कविगण इसकी साहित्य-वृद्धि के लिए सतत प्रयास कर रहे हैं। 'भोजपुरी' पत्रिका में नित नई कहानियाँ और

---

१. लेखक की 'भोजपुरी ग्राम-गीत' (भाग १)।
२. डॉ० उदयनारायण तिवारी—'भोजपुरी और उसका साहित्य'
३. वही।

कविताएँ प्रकाशित हो रही हैं। अतः ऐसी दशा में यह कहना कि भोजपुरी में साहित्य का अभाव है, अनुचित प्रतीत होता है।

भोजपुरी साहित्य का इतिहास लिखने में कठिनाई

भोजपुरी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसका अधिकांश साहित्य अभी तक मौखिक रूप में ही है। भोजपुरी का जो साहित्य लिखित रूप में विद्यमान है वह स्वल्प है, और प्रधानतया पद्य-रूप में ही उपलब्ध होता है। भोजपुरी के पद्यात्मक साहित्य में लोक-गीतों की ही प्रधानता है। इन गीतों के न तो रचयिताओं का ही पता चलता है और न इनके रचना-काल का ही। इन लोक-गीतों की कोई प्राचीन प्रति भी उपलब्ध नहीं होती, जिससे उनके रचना-काल का कुछ पता चल सके।

इन उपर्युक्त कारणों से भोजपुरी साहित्य के क्रमबद्ध, वैज्ञानिक इतिहास को लिखने में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। फिर भी अगले पृष्ठों में भोजपुरी साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रसंग में यहाँ यह लिखना अनुपयुक्त न होगा कि भोजपुरी साहित्य के इतिहास को विद्वानों के सामने उपस्थित करने का यह सर्वप्रथम प्रयास है। यहाँ जो कुछ सामग्री प्रस्तुत की जा रही है, वह सर्वथा मौलिक है।

आजकल भोजपुरी साहित्य-सम्बन्धी जो सामग्री उपलब्ध है, उसे प्रधानतया चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) सन्त-साहित्य
(२) लोक-साहित्य
(३) आधुनिक-साहित्य
(४) प्रकीर्ण लोक-काव्य-संग्रह

लोक-साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) यूरोपीय विद्वानों द्वारा संग्रहीत तथा (२) भारतीय विद्वानों द्वारा

संकलित। इसी प्रकार आधुनिक साहित्य को विवेचन की सुविधाओं के लिए तीन भागों में विभक्त किया गया है—(१) पद्य, (२) गद्य और (३) नाटक। इनका वर्णन इसी क्रम से आगे किया जायगा।

जिस प्रकार भारतीय दर्शन-शास्त्र के इतिहासकारों ने अद्वैत वेदान्त के सर्वप्रधान आचार्य भगवान् शंकराचार्य को मध्य-विन्दु मानकर इस वेदान्त के इतिहास को पूर्व-शंकर-युग, शंकर-युग, और पश्चात्-शंकर-युग—इन कालों में विभक्त किया है उसी प्रकार डॉ० ग्रियर्सन को भोजपुरी साहित्य के इतिहास का मध्य-विन्दु मानकर इस साहित्य को निम्नांकित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) पूर्व ग्रियर्सन-काल
(२) ग्रियर्सन-काल
(३) पश्चात् ग्रियर्सन-काल

इस काल-विभाजन के लिए हमारे पास पर्याप्त कारण भी हैं। भोजपुरी के लोक-गीतों के संग्रह तथा प्रकाशन के सम्बन्ध में डॉ० ग्रियर्सन ने प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। आज से लगभग ७०-८० वर्ष पूर्व—जबकि हिन्दी में लोक-गीतों के संग्रह का अभी श्रीगणेश भी नहीं हुआ था—डॉ० ग्रियर्सन ने भोजपुरी के अनेक लोक-गीतों को खोजकर इनका संग्रह किया और उनका समुचित रीति से सम्पादन करके अंग्रेज़ी में इनका अनुवाद भी प्रकाशित किया। इस प्रकार उन्होंने सभ्य जगत् का ध्यान इन 'गँवारू' कहे जाने वाले लोक-गीतों की ओर आकर्षित किया। डॉ० ग्रियर्सन ने अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया' में भोजपुरी भाषा का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करके इस प्रदेश के निवासियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने केवल स्वयं ही लोक-गीतों का संग्रह नहीं किया, बल्कि अपने समकालीन अन्य अंग्रेज़ सिविलियनों—ग्राउस तथा फ्रेज़र आदि—को भी इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। डॉ० ग्रियर्सन ने भोजपुरी भाषा तथा साहित्य की बहुमूल्य सेवा की है। फिर भी अनेक कारणों से तथा अपनी सुविधा के लिए पूर्वोक्त चार

विभागों के अनुसार ही यहाँ भोजपुरी साहित्य के इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।

भोजपुरी साहित्य की प्राचीनता

सबसे प्राचीन सन्त कवि, जिनकी कविता में भोजपुरी की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, महात्मा कबीरदास हैं; जिनका प्रादुर्भाव सन् १४८३ ई० में हुआ था। यद्यपि कबीर की भाषा मिश्रित या खिचड़ी भाषा है जिसमें पंजाबी, राजस्थानी तथा पूर्वी का सम्मिश्रण पाया जाता है फिर भी इससे पूर्वी बोली का ही पुट अधिक उपलब्ध होता है। कबीरदास जी ने स्वयं लिखा है कि मेरी बोली पूरब देश की है और जो धुर पूरब का निवासी है वही मेरी बोली को समझ सकता है—

"मेरी बोली पूरब की,..................................

................................, **जो धुर पूरब का होय ॥"**

पूर्वी बोली से कबीरदास जी का तात्पर्य भोजपुरी भाषा से था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है लिखित रूप में भोजपुरी कविता के जो उदाहरण आज उपलब्ध होते हैं वे सम्भवतः कबीर के पहले के नहीं मिलते। अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भोजपुरी लोक-गीतोंकी रचना का काल मुगलों के समय से अधिक प्राचीन नहीं हैं। मुगलों का शासन सन् १५२६ ई० से प्रारम्भ होता है। अतः भोजपुरी साहित्य का प्रारम्भ असन्दिग्ध रूप से १५०० ई० के लगभग माना जा सकता है। इस प्रकार भोजपुरी साहित्य का इतिहास १५०० ई० से लेकर आज तक का (१९५७ ई०) अर्थात् लगभग ४५० वर्षों का इतिहास है।

भोजपुरी साहित्य के सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजाश्रय प्राप्त न होने के कारण इस भाषा का उतना विकास नहीं हो सका जितना हिन्दी की अन्य बोलियों का हो सका है। यही कारण है कि इसका इतिहास क्रमबद्ध रूप में उपलब्ध नहीं होता। अतएव इसके

इतिहास-लेखक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

सिद्धों द्वारा भोजपुरी शब्दों का प्रयोग

भोजपुरी में अनेक सन्त कवियों ने काव्य की रचना की है। परन्तु सन्त कवियों के पूर्व में प्रादुर्भूत होने वाले सुप्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में से कुछ ने भोजपुरी के कतिपय शब्दों—विशेषकर क्रियाओं—का प्रयोग अपनी कविता में किया है। इन सिद्धों की काव्य की भाषा क्या थी इस विषय में बड़ा विवाद है। विद्वान् लोग अभी इस निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं कि इनकी भाषा पुरानी बँगला है, हिन्दी है या अन्य कुछ। यदि इनकी काव्य-भाषा की परीक्षा की जाय तो इसमें अनेक भोजपुरी के क्रिया-पद उपलब्ध होते हैं।

चौरासी सिद्धों में सिद्ध भुसुक का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। ये बिहार-राज्य के नालन्दा के पास के प्रदेश में एक क्षत्रिय-वंश में उत्पन्न हुए थे। इनका आविर्भाव-काल नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।[1] इन्होंने 'सहजगीति' नामक पुस्तक लिखी है जिसका एक पद्य यह है :

"आजि भुसु बंगाली भइली
णिम्र घरिणीं चण्डाली लइली।"

इस पद्य में 'भइली' क्रिया स्पष्ट ही भोजपुरी की है। भोजपुरी प्रदेश में अइली, गइली, खइली क्रिया-पदों का प्रयोग निरन्तर होता है और सर्वसाधारण इसे समझते और बोलते हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इस 'भइली' शब्द के विषय में लिखा है[2] कि "फिर 'भइली' शब्द बँगला में कहाँ व्यवहृत होता है। किन्तु वह काशी से मगह तक आज भी प्रचलित है।"

काशी से पूर्व और पटना के पश्चिम में जो भाषा बोली जाती है वह भोजपुरी है। अतः राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार भी 'भइली'

१. राहुल सांकृत्यायन—'पुरातत्त्व निबन्धावली', पृ० १७५-१७६
२. वही, पृ० १७७ का फुटनोट

शब्द के भोजपुरी होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। इसी प्रकार सिद्ध डोम्भिया तथा सिद्ध कुक्कुरिया ने भी अपनी कविता में भोजपुरी की क्रियाओं का व्यवहार किया है।

राहुल जी ने इन सिद्धों की भाषा को मगही हिन्दी का नाम दिया है।[१] मगही और भोजपुरी की सीमाएँ एक-दूसरे से मिलती-जुलती हैं। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि मगही में कविता लिखने वाले सिद्धों ने भोजपुरी के क्रिया-पदों का प्रयोग किया हो।

जायसी और तुलसीदास द्वारा प्रयोग

हिन्दी के अनेक कवियों ने भोजपुरी भाषा के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। ऐसे कवियों में जायसी और तुलसी का नाम प्रसिद्ध है। जायसी जायस (अवध) के रहने वाले थे। रमते जोगियों और साधुओं के सत्संग में रहने के कारण इनकी कविता में भोजपुरी शब्दों का मिलना कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। रही तुलसीदास जी की बात। उनके विषय में यह तो प्रसिद्ध ही है कि उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरित मानस' और 'विनय पत्रिका' का अधिकांश भाग काशी में ही लिखा था। काशी भोजपुरी क्षेत्र के ही अन्तर्गत है, अतः तुलसी की "भाखा' में भोजपुरी का गहरा पुट होना स्वाभाविक ही है।

तुलसी के 'मानस' में भोजपुरी के अनेक शब्द उपलब्ध होते हैं। तुलसीदास जी ने अधिकतर भोजपुरी में संज्ञा-शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु जायसी ने संज्ञा-शब्दों के अतिरिक्त क्रिया-पदों को भी अपनाया है।

जायसी ने अपनी पुस्तक 'पद्मावत' में अनेक ठेठ भोजपुरी शब्दों का प्रयोग किया है। जब पद्मावती पालकी पर चढ़कर रतनसेन से मिलने जाती है तो कवि कहता है:

---

१. **राहुल सांकृत्यायन—'पुरातत्त्व निबन्धावली', पृ० १८५।**

"साजि सबै चंडोल चलाये,
सुरंग *ओहार* मोति जनु लाये।"

इसमें 'ओहार' शब्द भोजपुरी का है, जिसका अर्थ पालकी का पर्दा होता है। आगे एक स्थान पर जायसी लिखते हैं कि **"का पछिताव आउ जो *पूजी*"** अर्थात् आयु के समाप्त हो जाने पर पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। हिन्दी में 'पूजना' का अर्थ पूजा करना या आदर-सत्कार करना होता है। परन्तु भोजपुरी में इसका अर्थ समाप्त होना है। इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग जायसी ने यहाँ किया है।

तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' में भोजपुरी शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया है। परन्तु इसके अतिरिक्त 'कवितावली', 'रामायण' और 'विनय-पत्रिका' में भी भोजपुरी के कुछ शब्द उपलब्ध होते हैं। भोजपुरी में आपके लिए 'रउरे' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी का सम्बन्ध-कारक का रूप 'राउर' होता है। तुलसीदास ने इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया है—

"कहत बचन दुःख *रउरे* लागा"

लक्ष्मण राम से कहते हैं कि :

"जो *राउर* अनुसासन पाऊँ,
कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ"

तुलसीदास ने भोजपुरी के कुछ ठेठ शब्दों का भी प्रयोग किया है। 'गँव' एक ऐसा ही शब्द है जिसका अर्थ है 'अवसर' या मौका। तुलसी लिखते हैं :

"जिमि *गँव* तकइ किरात किसोरी"

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं।

सन्त कवि

कबीर—भोजपुरी में कविता करने वाले सन्त कवियों में कबीर सर्व-प्रथम हैं। सम्भवतः यह सबसे पहले निर्गुणी सन्त थे जिन्होंने भोजपुरी

में अपनी कुछ कविताओं की रचना की है। कबीरदास का जन्म काशी में हुआ था, जो भोजपुरी क्षेत्र के अन्तर्गत है। साधु-सन्तों की सत्संगति में उन्होंने इस क्षेत्र में भ्रमण में किया था। अतः इनकी कुछ रचनाओं का भोजपुरी में उपलब्ध होना अस्वाभाविक बात नहीं है। चौरासी सिद्धों की कविता में कतिपय भोजपुरी शब्दों का प्रयोग ही पाया जाता है, परन्तु सर्वप्रथम कबीर के ग्रन्थों में ही भोजपुरी कविता उपलब्ध होती है। अतः कबीर को यदि भोजपुरी का आदिकवि माना जाय तो यह कुछ अनुचित न होगा।

सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डॉक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखा है कि भोजपुरी भाषा का सबसे पुराना नमूना कबीर के कतिपय पद्यों में पाया जाता है। यद्यपि उन्होंने तत्कालीन हिन्दी कवियों की प्रथा के अनुसार साधारणतया ब्रजभाषा और कभी-कभी अवधी में कविता की है, परन्तु उसमें भोजपुरी का पुट यत्र-तत्र लक्षित हो ही जाता है। और जहाँ उन्होंने 'अपनी भोजपुरिया' का प्रयोग किया है वहाँ ब्रजभाषा कभी-कभी परिलक्षित हो जाती है।[1]

---

१. The oldest specimens in this speech that we possess are probably a few songs written by the great religious reformer and mystic teacher of Northern India who flourished in the 15th century. Kabir was an inhabitant of the Bhojpuriya tract, but following the practice of the Hindustani poets of the times, be generally used Braj-Bhakha and occassionally Awadhi. His Braj-Bhakha, at times, betrays an eastern—Bhojpuriya form here and there. And when he employs his *own Bhojpuriya dialect*, Braj-Bhakha and western forms show themselves.

चटर्जी—'ओरिजिन एण्ड डेवेलेपमेण्ट आफ़ दि बेङ्गाली लेंग्वेज', भाग १।

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में डॉ० चटर्जी द्वारा प्रयुक्त 'अपनी भोजपुरिया' शब्द ध्यान देने योग्य है। इस उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कबीर की अपनी भाषा भोजपुरी ही थी और विशेषकर इसीमें उन्होंने अपनी कविता लिखी थी। जिन प्रान्तों या प्रदेशों में इनकी कविता का प्रचार हुआ वहाँ के लोगों ने उसमें स्थानीय शब्दों को जोड़ दिया। इसीलिए कबीर की रचनाओं में राजस्थानी, ब्रजभाषा, अवधी और भोजपुरी का मिश्रण पाया जाता है। डॉ० चटर्जी ने कबीर की भोजपुरी कविता के उदाहरण में निम्नांकित चार पद्यों को उद्धृत किया है :

"कनवा फराइ जोगी जटवा बढ़वले
दाढ़ी बढ़ाई जोगी होइ गइले बकरा।
कहही कबीर सुनो भाई साधो
जम दरवजवा बान्धल जइबे पकरा।।१।।
बाबा घर रहलू त बबुई कहवलू
सँइयां घर चतुर सेयान।
चेतव घरवा आपन रे।।२।।
का ले जइबो, प्रीतम घर अइबो,
गाँव के लोग जब पूछन लगिहें,
तब हम का रे बतइबो।।३।।
सूतल रहलों में नींद भरि हो,
पिया विहले जगाय।
चरन कँवल के अञ्जन हो,
नैना लेलू लगाय।।४।।"

इन पद्यों के अतिरिक्त कबीर की भोजपुरी कविताओं के अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं जिनमें उन्होंने ठेठ भोजपुरी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। आगे की कविता[1] लीजिए :

---

१. 'कबीर साहब की शब्दावली', भाग १, पृ० २३।

"कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।
चन्दन खाट के बनल खटोलना,
तापर दुलहिन सूतल हो।।
उठो री सखी मोरी माँग सँवारो,
दुलहा मोसे रूसल हो।
आइ जमराज पलंग चढ़ि बइठे,
नैनन आँसू टूटल हो।
चार जने मिलि खाट उठवले,
चहुँ दिसि धू धू उठल हो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
जग से नाता छूटल हो।।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कबीर की भाषा भोजपुरी है। 'मेरी बोली पूर्व की' यह लिखकर उन्होंने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है।[1]

धरमदास—कबीरदास की ही भाँति धरमदास भी एक सन्त कवि थे, जो इन्हींकी परम्परा में हुए थे। ऐसा कहा जाता है कि वे कबीरदास जी के शिष्य थे और उनके पन्द्रह वर्ष बाद तक जीवित रहे। इस कथन से कबीर के साथ इनका सम्बन्ध प्रमाणित होता है। सन् १९२३ ई० में बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से 'धरमदास जी की शब्दावली' प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक से धरमदास जी की कविता का एक उदाहरण दिया जाता है :

"मितऊ मड़ैया सूनि करि गैलो।
अपन बलम परदेस निकरि गैलो।
हमरा के कछुओ न गुन देइ गैलो।
जोगिन होइ के मैं बन बन ढूढ़ो।
हमरा के बिरह बैराग देइ गैलो।

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी—'कबीर', पृ० २७३।

संग की सखी सब पार उतरि गेली,
हम धनि ठाढ़ी अकेली रहि गेली।
धरमदास यह अरज करतु है,
सार शब्द सुमिरन देइ गेली।।"

उपर्युक्त पद में क्रियाओं का जो रूप दिखाई पड़ता है वह स्पष्ट ही भोजपुरी का है। इसी प्रकार धरमदास जी की कविता के अन्य उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। उनकी दूसरी कविता की कुछ पंक्तियाँ दी जाती है जिसमें रहस्यवाद की बाँकी झाँकी हमें देखने को मिलती है :[1]

"कहवाँ से जीव आइल,
कहवाँ समाइल हो ।।१।।
कहवाँ कइल मुकाम,
कहाँ लपटाइल हो ।।२।।
निरगुन से जीव आइल,
सरगुन समाइल हो ।।३।।
कायागढ़ कइल मुकाम,
माया लपटाइल हो ।।४।।
एक बूँद से काया,
महल उठावल हो ।।५।।
बूँद परे गलि जाय,
पाछे पछितावल हो ।।६।।"

शिवनारायण—यह भी एक सन्त कवि थे जिनका जन्म उत्तर-प्रदेश के गाजीपुर जिले के चन्द्रवार नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है, जो हस्तलिखित रूप में उपलब्ध होते हैं। इनका रचना-काल सन् १७३५ ई० के आस-पास समझना चाहिए।

सन्त कवि शिवनारायण ने अपने ग्रन्थों में दोहा और चौपाई छन्दों का प्रयोग किया है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरित

१. 'धरमदास जी की शब्दावली', पृ० ६२० शब्द ३।

मानस' की रचना की है। इन्होंने प्रधानतया अवधी भाषा में अपने ग्रन्थों की रचना की है। परन्तु जहाँ इन्होंने जलसार (जाँत के गीत) और घाँटो (चैता) लिखा है वहाँ भोजपुरी भाषा का प्रयोग किया है। इनकी कविता का केवल एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :

"सूतल रहलों नींद भरी गुरु देले हो जगाई।
गुरु के सबद रंग अंजन हो ले लो नयना लगाई,
तब ही से नींदो नाहि आवे हो नाहो मन अलसाई,
गुरु के चरन रज सागर हो, नित सबेरे नहाई।
जनम जनम के पातक हो, छन में देहल दहवाई।
पेन्हलो में सुमति गवनवां हो, कुमति दिहलो उतारि।
सब्द के मांग सवारों हो, दुरमति दहवाई।
पियलों में प्रेम पियलवा हो, मन गइले बउराई।
आगि लगहु तन जरि जाहु हो मोरा कुछ ना सोहाई।
बइठलों में ऊँची चउरिया हो, जहाँ जोर न जाई।
'शिवनारायण' गुरु समरथ हो, देखि काल डेराई॥"

धरनीदास—भोजपुरी के सन्त कवियों में बाबा धरनीदास जी का नाम प्रसिद्ध है। ये बिहार-राज्य (प्रान्त) के सारन जिले के माँझी नामक गाँव के निवासी थे। धार्मिक प्रवृत्ति इनकी बचपन से ही थी। अतः ये अपना अधिकांश समय हरि-भजन में ही व्यतीत करते थे। ये स्थानीय जमींदार के यहाँ मुन्शी का काम करते थे। एक दिन इन्होंने दफ्तर में काम करते समय ऑफिस के कागज-पत्रों पर एक घड़ा पानी डाल दिया। लोगों द्वारा इसका कारण पूछने पर इन्होंने बतलाया कि जगन्नाथपुरी में भगवान् के वस्त्र में आग लग गई थी। अतः उसे शीघ्र बुझा देने के लिए इन्होंने ऐसा किया था। पता लगाने पर यह घटना सच्ची निकली। इस घटना के पश्चात् इन्हें संसार से इतना अधिक वैराग्य हो गया कि इन्होंने नौकरी छोड़ दी और विरक्त हो गए। इन्होंने इस घटना की ओर निम्नांकित शब्दों में संकेत किया है :

"राम नाम सुधि आई।
लिखनी अब ना करबि ए भाई।"

अर्थात् मुझे अब राम-नाम का स्मरण हो गया है। अतः मैं अब लिखने का काम (मुन्शी का पेशा) नहीं करूँगा।

तब से ये विरक्त होकर भगवान् के भजन में ही अपने समय को बिताने लगे थे। इन्होंने अपने विरक्त होने का समय 'प्रेम-प्रगास' नामक ग्रन्थ में सन् १६५६ ई० (१७१३ वि० सं०) लिखा है, जिससे पता चलता है कि इनका आविर्भाव-काल सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ था। इनके एक पद में शाहजहाँ तथा उसके पुत्र औरंगजेब के नाम का उल्लेख हुआ है जिससे इनके विरक्त होने के समय का निर्णय निश्चित रूप से किया जा सकता है। आपका पद यह है :

"सम्वत सत्रह सौ चलि गयऊ।
तेरह अधिक ताहि पँ भयऊ॥
शाहजहाँ छोड़ी दुनियाई।
पसरी औरंगजेब दुहाई॥
सोच-विचारि आतमा जागी।
धरनी धरेऊ भेस बैरागी॥"

इससे पता चलता है कि १७१३ विक्रमी संवत् में ये वैरागी हो गए थे।

बाबा धरनीदास जी सन्त और कवि दोनों थे। परन्तु कवि की अपेक्षा ये सन्त ही अधिक थे। कविता तो इनके हृदय से निकले हुए भक्तिपूर्ण उद्गारों की वाहन-मात्र थी। इन्होंने दो ग्रन्थों की रचना की है—(१) 'शब्द प्रकाश' और (२) 'प्रेम प्रगास'। ये दोनों पुस्तकें माँझी गाँव के पुस्तकालय में हस्तलिखित रूप में सुरक्षित हैं। 'प्रेम प्रगास' की एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार इस ग्रन्थ को लिपिबद्ध करने की समाप्ति सन् १८७३ ई० में हुई थी। इसे माँझी के महन्त रामदास जी ने जानकी दासी उर्फ बरता कुँवर के लिए लिखा था। इस पुस्तक की

भाषा भोजपुरी है, जो अवधी से मिली-जुली है। इसमें 'पयार' छन्द का प्रयोग हुआ है, जो बँगला में अधिकता से पाया जाता है। एक उदाहरण लीजिए :

"सुमिरु सुमिरु मन सिरजन हार,
जिह्न कैला सुर नर सरग पताल।
रवि ससि अगिनि पवन कहला पानी,
जिआ जन्तु सनि सनि आनि आनि बानी।
गुरु के चरण रज सिरवा चढ़ाई।
जिह्न लेला भव जल बुड़त बचाई॥
देवता पिता बिनवलों कर जोरी।
सेवा लेव मानि अलप बुधि मोरी॥"

धरनीदास जी की कविता का दूसरा उदाहरण 'प्रेम-प्रगास' से यहाँ उद्धृत किया जाता है[1] :

"की सुभ दिना आजु, सखी सुभ दीना॥१॥
बहुत दिनन्हि पिया बसल बिदेस।
आजु सुनल निजु आवन संदेस॥२॥
चित्र चित्र सरिया में लिहल लिखाई।
हिरदय कवल धइलो दियरा लेसाई॥३॥
प्रेम पलाग तहाँ धइलो बिछाई।
नख सिख सहज सिंगार बनाई॥४॥
मन सेवकहिं दिहु आगु चलाई।
नैन धइल दुई दुअरीं बइसाई॥५॥
धरनी सो धनी पलु पलु अकुलाई।
बिनु पिया जीवन अकारथ जाई॥६॥"

---

१. इनके विस्तृत जीवन वृत्त तथा कविता के लिए देखिए—'भोजपुरी और उसका साहित्य', डा० उदयनारायण तिवारी।

लक्ष्मी सखी—बाबा लक्ष्मीदास जी एक पहुँचे हुए महात्मा थे। ये लक्ष्मी सखी या लछुमी सखी के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म बिहार-राज्य के सारन जिले के अमनौर नामक गाँव में हुआ था। इनका आविर्भाव-काल १६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। जैसा कि इनके नाम से विदित होता है ये सखी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके पिता का नाम मुन्शी जगमोहन दास था। लक्ष्मी सखी ने एक पद में अपना परिचय दिया है, जिससे पता चलता है कि सारन जिले के अमनौर नामक स्थान के कायस्थ वंश में इनका जन्म हुआ था। इनका जीवन बड़ा ही सात्विक था। अपने जीवन की गोधूलि में इन्होंने संसार से नाता तोड़कर भगवान् से सम्बन्ध जोड़ा था। बाल-बच्चों से मुँह मोड़, कामिनी और काञ्चन को छोड़, इन्होंने लौकिक सुखों के प्रति मोह तोड़ दिया था। अपने गाँव अमनौर से थोड़ी दूरी पर 'टेरुआँ' नामक स्थान में इन्होंने अपना आश्रम बनाया था, जहाँ ये सदा रहा करते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में ये भजन बनाकर तथा उन्हें गाकर अपना समय बिताया करते थे। इसी 'टेरुआँ' स्थान में इनकी ऐहिक लीला समाप्त हुई। 'अमरसीढ़ी' नामक ग्रन्थ में इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है[1] :

"सुनु सखी सुनहु कहव कुछ भऊर।
सारन जिला तखत *अमनऊर* ॥१॥
कायथ बनस में जनमेऊ बऊर।
राम लखन फल फरिगइले दोऊर ॥२॥
जनमभूमि कबों पुजलों गऊर।
मीलि गईले सतगुरु माथे चढ़ल मऊर ॥३॥
जियते मरिगइलों लडकल ठऊर।
सन्त समाज में चलि गइलों दऊर ॥४॥

१. भूमरा पृ० १०।

सतगुरु दिहले ग्यान के लऊर।
झटपट मरलीं में माछर सऊर ॥५॥
पाकल ब्रह्म अगिनि कर भऊर।
खइलों में साधु सन्त मिलि अऊर ॥६॥
मौजे 'टेरुआँ' में अइलो वऊर।
मिलि जुलि भगत बनावल ठऊर ॥७॥
'लछमी सखी' के सुन्दर पियवा।
आरे तुम लगि मेरी दऊर ॥८॥"

ऊपर के उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि लक्ष्मी सखी ने सन्त-समाज में जाकर सत्संग किया था और सत् गुरु की कृपा से इनको ज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

लक्ष्मी सखी के द्वारा रचित चार ग्रन्थों का पता चलता है— (१) 'अमर सीढ़ी', (२) 'अमर कहानी', (३) 'अमर विलास' और 'अमर फराश'। इनमें से प्रथम दो पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिन्हें 'टेरुआँ' गाँव के निवासी इनके किसी शिष्य ने इनकी मृत्यु के पश्चात् छपवाया था। परन्तु अन्तिम दो पुस्तकें बहुत प्रयत्न करके भी अभी उपलब्ध नहीं हो सकी हैं। बहुत सम्भव है कि 'टेरुआँ' गाँव के आश्रम में इन पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हों।

लक्ष्मी सखी का सबसे बड़ा, प्रधान तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अमर सीढ़ी' है, जो इनके अन्य ग्रन्थों से परिमाण में भी अधिक है। इस ग्रन्थ में ३६० पृष्ठ हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न रागों में भगवद्भक्ति के पद गाये गए हैं। कबीर की भाँति इनके पदों में कहीं तो योग-साधना का उल्लेख मिलता है, तो कहीं रहस्यवाद की झाँकी उपलब्ध होती है। इनकी यह रहस्यमयी उक्ति कितनी सुन्दर है :

"सखी तोरे पियवा देह लेइ एगो पतिया।
बारहु दियवा जुड़ाइ लेहु हियवा।
समुझि समुझि के बतिया ॥१॥

इहवाँ न केहू साथी ना संघतिया।
कामिनी, कन्त तोरे जोहत बटिया ॥२॥
सोने के खाटी रूपे के पटिया।
करु मज्जन चलु त्रिकुटी के घटिया ॥३॥
ओहि रे घाट पर सुन्दर पियवा,
निरखत रहु दिन रतिया ॥४॥
'लछमी सखी' के सुन्दर पियवा,
सूत रहू लगाई के छतिया ॥५॥"

इस पद में ईश्वर को पति मानकर उनके साथ प्रेम करने की व्यञ्जना कितनी मधुर बन पड़ी है। 'लक्ष्मी सखी' सखी-सम्प्रदाय के अनुयायी थे, जिसमें परमात्मा को पति और आत्मा को स्त्री मानकर प्रेम किया जाता है। उपर्युक्त पद में इसी प्रेम-पद्धति की ओर संकेत किया गया है।

इनका दूसरा ग्रन्थ 'अमर कहानी' है। इसमें मैथिल कोकिल विद्यापति के अनुकरण पर भक्ति के पद गाये गए हैं। 'झूमरा', 'विवाह-गारी' और 'कजली' इनके अन्य छोटे ग्रन्थ हैं। इनके पट्टशिष्य कामता सखी ने 'छुट्टा दोहा' नामक ग्रन्थ लिखा है। इन सभी ग्रन्थों को इनके शिष्य महेशप्रसाद वर्मा ने सन् १९१२ ई० में छपरा से प्रकाशित किया था।

लक्ष्मी सखी की कविता बड़ी ही सुन्दर, सरस, मधुर और हृदयस्पर्शी है। इनकी कविता में भोजपुरी की असली मिठास पाई जाती है। ये कवि होने के साथ-ही-साथ प्रेम-मार्ग के अनुयायी थे। अतः इनकी कविता में प्रेम का पुट मिलना स्वाभाविक ही है। नीचे की इस कविता में प्रेम की गम्भीर व्यञ्जना की गई है :

"मने मने करीले गुनावनि हो, पिया परम कठोर।
पाहनो पसीजि पसीजि के हो बहि चलत हिलोर ॥१॥
जे उठत विसय लहरिया हो, छने छने में घंघोर।
तनिको ना कनखि नजरिया हो, चितवत मोरे ओर ॥२॥

भावे घर, आँगन, ना सेजरिया हो, नाहि लहर पटोर ।
बेंजन कवनो तरकरिया हो, जइसे माहुर घोर ॥३॥
तलफीलें आठो पहरिया हो, गति मति भइली भोर ।
केहू ना चीन्हेला अजरिया हो, बिनु अवध किसोर ॥४॥
कइसें सहीं बारी रे उमिरिया हो, दुःख सहस कठोर ।
'लछमी सखी' मोरा नाहिं भावेला हो, पथ भात परोर ॥५॥"

इस गीत में शब्दों का माधुर्य जितना आकर्षक है, भावों का चमत्कार भी उतना ही प्रशंसनीय है। यह गीत क्या है रस का कलश है। **'पाहनो पसीजि पसीजि के हो बहि चलत हिलोर'** इस एक पंक्ति में प्रेम का समुद्र हिलोरें मार रहा है। **'तनिको ना कनखि नजरिया हो चितवन मोरे ओर'** में कितनी करुणा और विवशता सिमटी पड़ी है। प्रियतम इतना कठोर है कि 'दृष्टिदान' की बात तो दूर रही वह आँख के कोने से भी नहीं देखता। **'तलफीले आठो पहरिया हो'** में कितना गूढ़ भाव भरा पड़ा है। इस गीत में भोजपुरी की खालिस मिठास के साथ लावण्य भी कुछ कम नहीं है।

लक्ष्मी सखी की कविता रहस्यवाद की ओर उन्मुख दिखाई पड़ती है। इसमें सच्चे रहस्यवाद की झलक पाई जाती है। भगवान् को प्रियतम मानकर बाँधा गया यह रूपक कितना सुन्दर तथा सरस है :

"सुनि सुनि पिया के सनेस हमरो जियरा ललचे ना ।
टपर टपर गिरे लोर, सखिया चलते चलते ना ॥१॥
काहे जे औगुन भईल, बहुत गलते गलते ना ।
तेहि से चले के साथ सखिया मलते मलते ना ॥२॥
पिया बिना जियवा हमरो हियवा कलपे ना ।
जेकर तेज प्रताप घट घट नूर झलके ना ॥३॥
बेरि बेरि हेरोले बाट सखिया पलके पलके ना ।
करि मंजन असनान सरजू जल जल जल के ना ॥४॥

राजा जनक के बेटी हम त दोसरा खलके ना।
'लक्ष्मी सखी' पिया घरवो बहियाँ छोड़वो बलके ना ॥५॥"

इस गीत की पद-शय्या बड़ी सरस बन पड़ी है। यह पद रस से भरा हुआ है।

बुलाकीदास—बाबा बुलाकीदास का नाम भोजपुरी के सन्त कवियों में प्रसिद्ध है। चैता या 'घाँटो' के रचयिता के रूप में इनका नाम भोजपुरी प्रदेश में विख्यात है। इनका जन्म सं० १७८० वि० में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के अन्तर्गत सुलतानपुर नामक गाँव में हुआ था। ये सेंगर वंशी राजपूत कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम जोधराय था। इनकी स्त्री कुन्द कुँवरि के नाम से प्रसिद्ध थीं। ये पढ़ी-लिखी थीं और कविता भी करती थीं। बुलाकीदास ने अपने भजनों में इनके नाम का उल्लेख किया है। विवाह के कुछ ही वर्षों के पश्चात् इन्होंने गृहस्थाश्रम छोड़कर 'अमनपुर' गाँव में अपनी कुटिया बनाई और विरक्त होकर अन्त समय तक वहीं रहे।

बुलाकीदास जी नित्य-प्रति कुछ भजन बनाकर भगवान् को सुनाया करते थे। इन भजनों को सुनकर इनके भक्त लोग इसे गाते थे। परन्तु बुलाकीदास जी की कवि-रूप में ख्याति उनके द्वारा रचे गए चैता या 'घाँटो' नामक लोक-गीतों के कारण है, जो आज भी भोजपुरी प्रदेश में घर-घर गाए जाते हैं। बुलाकीदास जी चैता को बनाकर उन्हें अपनी पुस्तक में लिखते जाते थे। परन्तु दुर्भाग्यवश उनकी मृत्यु के उपरान्त इस हस्त-लिखित प्रति को कोई व्यक्ति चुरा ले गया। उनके भक्तों तथा श्रोताओं को जो चैता कण्ठस्थ याद थे उन्हींका आजकल प्रचार है। यदि इनके गीतों का संग्रह उपलब्ध होता तो वह भोजपुरी साहित्य की अमूल्य निधि होती। किसी उत्साही विद्वान् को चाहिए कि रसड़ा के आस-पास के गाँवों में इनके नाम से जो गीत प्रसिद्ध हैं उनका संग्रह करके प्रकाशित करे।

बुलाकीदास जी के गीतों का कोई संग्रह उपलब्ध नहीं है। जन-

साधारण के कण्ठ में उनके जो गीत सुरक्षित रह गए हैं वे ही उनकी कृति हैं। उन्होंने प्रत्येक चैता के अन्त में अपना नाम दे दिया है। अतएव उनके बनाये हुए गीतों को पहचानने में देर नहीं लगती। नीचे लिखा हुआ उनका यह 'चैता' बड़ा प्रसिद्ध है जिसमें कोई स्त्री अपने आलसी तथा अधिक सोने वाले पति को कोस रही है :

"रामा साँझहि के सूतल फूटली किरिनिया हो रामा।
तबो नाँहि जागेला हमरो बलमुआ हो रामा॥ १॥
रामा चुर घोंचि मरलीं पइरिया घोंचि मरली हो रामा।
तबो नाँहि जागेला सइयाँ अभागा हो रामा॥ २॥
रामा गोड़ तोरा लागिला लहुरी ननदिया हो रामा।
रचि एक आपन भइया देहु ना जगाई हो रामा॥ ३॥
रामा कहसे के भउजी भइया के जगाई हो रामा।
हमरो भइया निंदिया के मातल हो रामा॥ ४॥
रामा तोरे लेखे ननदी तोर भइया निंदिया के मातल हो रामा।
मोरे लेखे चान सुरुज दुनो छपित भइले हो रामा॥ ५॥
रामा 'दास बुलाकी' चइत घाँटो गावे हो रामा।
गाइ गाइ बिरहिन सखी समुझावे हो रामा॥ ६॥"

कोई स्त्री कहती है कि मेरा पति इतना आलसी तथा अधिक सोने वाला है कि वह सन्ध्या समय ही सो जाता है और दूसरे दिन सूर्योदय होने के पश्चात् भी नहीं जगता। मैंने उसे लकड़ी के टुकड़े से मारकर जगाने का प्रयत्न किया परन्तु मेरा 'अभागा' प्रियतम फिर भी नहीं जगता। वह अपनी छोटी ननद को सम्बोधित करती हुई कहती है कि ए ननद! तुम अपने भैया को जरा जगा दो! इस पर ननद उत्तर देती है कि मेरा भाई तो गाढ़ निद्रा में मस्त होकर सो रहा है। भला! मैं इसे कैसे जगा सकती हूँ? तब भावज कहती है तुम्हारे लिए तो तुम्हारा भाई सो रहा है परन्तु मेरे लिए तो सारा संसार ही शून्य दिखाई दे रहा है।

यह चैता कितना सुन्दर है। पत्नी का अपने प्रियतम के प्रति प्रेम कितना प्रगाढ़ है। एक दूसरा चैता देखिए जिसमें ननद और भावज पानी भरने के लिए पनघट पर गई हैं। वहाँ पर उसका परदेसी पति छद्म वेश में आ जाता है और अपनी प्रियतमा से प्रेम की बातें करता है :[१]

"रामा ननदी भउजिया दुनो पनिहारिन हो रामा।
मिलि जुलि सागर पानी भरे चलली हो रामा ॥१॥
रामा भरि घूठि पनिया घरिलवो ना डूबे हो रामा।
कौन रसिक वे घरिला जुठि अवले हो रामा ॥२॥
रामा घरिला भरि भरि अरदा चढ़वली हो रामा।
केहू नाँहि घरिला मोर अलगावे हो रामा ॥३॥
रामा घोड़वा चढ़ल आवे हंसराज हो रामा।
रचि एक घरिला मोर अलगाव हो रामा ॥४॥
रामा एक हाथे हंसराज घरिला अलगावे हो रामा।
दूजा रे हाथे आँचर घई बेलमावे हो रामा ॥५॥
रामा छोड़-छोड़ हंसराज मोर आंचरवा हो रामा।
मोरा घरे बाड़ी सासु ननदी दारुनिया हो रामा ॥६॥
रामा जो तोर सुन्नरी, सासु-ननदी दारुनिया हो रामा।
काहे लागि सागर पनिया के अइली हो रामा ॥७॥
रामा देवरा भुलाइल आरे भइया पाहुन हो रामा।
ओहि लागि सागर पनिया के अइली हो रामा ॥८॥
रामा 'दास बुलाकी' चहत घाँटो गावे हो रामा।
गाइ गाइ बिरहिन सखी समुझावे हो रामा ॥९॥"

१. लेखक की 'भोजपुरी ग्राम गीत' (भाग १) नामक पुस्तक पृ० ३४२।

लोक-साहित्य

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भोजपुरी साहित्य को सामान्यतया चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) सन्त साहित्य, (२) लोक साहित्य, (३) आधुनिक साहित्य, (४) प्रकीर्ण लोक-काव्य। भोजपुरी में लिखे गए सन्त साहित्य का संक्षिप्त परिचय पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है। यहाँ भोजपुरी के लोक-साहित्य का विवरण प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया जा रहा है। आजकल भोजपुरी में संग्रहीत जो-लोक-साहित्य उपलब्ध होता है उसको हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) यूरोपीय विद्वानों द्वारा संकलित, (२) भारतीय विद्वानों द्वारा संग्रहीत। इसमें सन्देह नहीं कि भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह का श्रीगणेश उन पश्चिमी विद्या-प्रेमी शासकों ने किया था जो इस देश में गत शताब्दी के उत्तरार्ध में शासन करने के लिए आये थे। उनके इस मौलिक कार्य की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उन विदेशी विद्वानों ने लोक-साहित्य के महत्त्व को समझकर इनका संग्रह तथा प्रकाशन भी किया। विदेशी जनता के सामने भोजपुरी लोक-साहित्य के सुन्दर तथा मनोरम गीतों को रखकर उन्होंने इसकी महत्ता को प्रति-

पादित किया। इन विदेशी मनीषियों में डॉ० सर जार्ज ग्रियर्सन का नाम बहुत प्रसिद्ध है, जिन्होंने लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया के सुपरिन्टेण्डेण्ट के पद से बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। परन्तु इन विद्वानों के संग्रह-कार्य का वर्णन करने के पहले भोजपुरी लोक-साहित्य का सामान्य परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है।

सामान्य परिचय

भोजपुरी लोक-साहित्य को प्रधानतया चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) लोक-गीत

(ख) लोक-गाथा

(ग) लोक-कथा

(घ) प्रकीर्ण-साहित्य

भोजपुरी-साहित्य में लोक-गीतों का ही अंश अधिक है। सच तो यह है कि भोजपुरी का जो साहित्य अब तक लिपिबद्ध किया गया है उससे उसका मौखिक साहित्य कई गुना अधिक है, जो अभी तक लिपि की कारा में बन्द नहीं किया जा सका है। इसी लोक-साहित्य का संक्षिप्त परिचय पाठकों के सामने उपस्थित किया जा रहा है।

लोक-गीतों को साधारणतया पाँच भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) संस्कार-सम्बन्धी गीत

(२) ऋतु-सम्बन्धी गीत

(३) जाति-सम्बन्धी गीत

(४) व्रत-सम्बन्धी गीत

(५) क्रिया-सम्बन्धी गीत

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लोक-गीतों के अनेक प्रकारों का वर्णन किया है, परन्तु वे सभी प्रकार इन उपर्युक्त पाँचों भेदों में ही अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। संस्कार-गीत उन गीतों को कहते हैं जो विभिन्न संस्कारों के

अवसर पर गाये जाते हैं। ये संस्कार प्रधानतया निम्नांकित हैं—

(१) पुत्र-जन्म

(२) मुण्डन

(३) यज्ञोपवीत

(४) विवाह

(५) गवना या द्विरागमन

पुत्र-जन्म के अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'सोहर' कहते हैं। इन्हें 'सोहिलो' या 'मंगल' भी कहा जाता है। 'सोहर' शब्द की उत्पत्ति 'शोभन' शब्द से हुई है। पुत्र का जन्म विशेष उत्सव का अवसर प्रदान करता है, अतएव उस प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए गीत गाना स्वाभाविक ही है। परन्तु पुत्री के जन्म के अवसर पर ये गीत नहीं गाए जाते। पुत्र-जन्म के गीतों के दो भेद किये जा सकते हैं—(१) पूर्व-पीठिका और उत्तर-पीठिका; अर्थात् पुत्र के पैदा होने के पहले के गीत और उसके बाद में गाए जाने वाले गीत। पूर्व-पीठिका में गर्भिणी स्त्री की देह-यष्टि, दोहद (गर्भिणी की अभिलाषा) और प्रसव के कष्टों का सजीव वर्णन होता है और उत्तर-पीठिका के गीतों में पुत्र-जन्म से उत्पन्न उत्साह और उमंग का उल्लेख रहता है। सोहर बड़े ही सरस और सुन्दर होते हैं, जिन्हें पढ़ या सुनकर हृदय में गुदगुदी पैदा होने लगती है।

जब बालक कुछ बड़ा हो जाता है तब उसका मुण्डन-संस्कार किया जाता है। यह संस्कार पुत्र-जन्म के विषम वर्षों अर्थात् पहले, तीसरे या पाँचवें वर्ष में किया जाता है। इस संस्कार के पहले बालक का बाल काटना निषिद्ध है। अतः इसे प्रथम केश-कर्तन-संस्कार समझना चाहिए।

जब लड़का आठ-दस वर्ष का हो जाता है तब उसका यज्ञोपवीत-संस्कार किया जाता है। भगवान् मनु ने लिखा है कि ब्राह्मण के पुत्र का यज्ञोपवीत-संस्कार आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य का बारहवें वर्ष में होना चाहिए। किस जाति के बालक का किस

ऋतु में यह संस्कार होना चाहिए, इसका भी विधान उन्होंने किया है। प्राचीन काल में यज्ञोपवीत-संस्कार होने के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरुकुल में चला जाता था और लगभग दस-बारह वर्ष तक विद्याध्ययन करने के पश्चात् वह घर लौटता था। इसे 'समावर्तन'-संस्कार कहते थे। यद्यपि आज का ब्रह्मचारी गुरुकुल में पढ़ने के लिए नहीं जाता परन्तु यज्ञोपवीत का यह संस्कार आज भी प्रायः किया जाता है। यज्ञोपवीत के गीतों में ब्रह्मचारी की वेश-भूषा, भिक्षा-याचना तथा पढ़ने के लिए काशी जाने का उल्लेख पाया जाता है।

भोजपुरी विवाह-सम्बन्धी गीतों में विवाह के अवसर पर किये जाने वाले अनेक विधि-विधानों का वर्णन पाया जाता है। इन गीतों में तिलक तथा दहेज की प्रथा, बारात का प्रस्थान, बारातियों के विभिन्न प्रकार के भोज्य-पदार्थ, मण्डप में विवाह की विधि तथा सप्तपदी आदि का उल्लेख हुआ है। ये विवाह के गीत दो प्रकार के होते हैं—(१) वर-पक्ष के गीत और (२) कन्या-पक्ष के गीत। वर-पक्ष के गीतों में जहाँ उत्साह, उत्सव और उमंग का वर्णन होता है, वहाँ कन्या-पक्ष वाले गीतों में विषाद की गहरी छाया दिखाई पड़ती है। एक गीत में लिखा है कि जिस लड़की का आज विवाह हो रहा है, उसका पिता आज सुख की नींद कैसे सो सकता है। तिलक के पश्चात् वर तथा कन्या के घर में विवाह-सम्बन्धी जो विभिन्न विधियाँ सम्पादित की जाती हैं, उन सभी अवसरों पर गीत गाए जाते हैं।

विवाह के कुछ दिनों के बाद जब लड़की पिता के घर से अपने पति के घर प्रथम बार जाती है, उसे 'गवना' कहते हैं। यह संस्कृत के 'गमन' शब्द का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ जाना है। चूँकि लड़की विवाह के पश्चात् प्रथम बार पति के घर 'गमन' करती है, अतः इसे 'गवना' कहा जाता है। गवना के गीत बड़े कारुणिक और हृदय-द्रावी होते हैं। इनमें करुण-रस लबालब भरा रहता है। पुत्री की विदाई सचमुच बड़े ही दुःख का अवसर है। कालिदास ने लिखा है कि जब महर्षि कण्व

इस अवसर पर अपने आँसुओं की झड़ी को न रोक सके, तब साधारण मनुष्यों का दुखी होना स्वाभाविक ही है। एक गीत में पुत्री की विदा के अवसर पर पिता के रोने से गंगा में बाढ़ के आने, माता के रोने से सर्वत्र अन्धकार छा जाने तथा भाई के रोने से पैर तक उसकी धोती भीगने का उल्लेख किया गया है :

"बाबा के रोवले गंगा बढ़ि अइली
आया के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजे
भऊजी नयनवा ना लोर॥"

इस गीत में पति-गृह को जाने वाली लड़की के माता-पिता और भाई का हृदय पिघलकर बहता हुआ दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार अन्य गीतों में माता-पिता के दुःख का वर्णन बड़ी ही मार्मिक रीति से किया गया है।

ऋतु-सम्बन्धी गीत

ऋतु-सम्बन्धी गीत वे हैं, जो विभिन्न ऋतुओं में गाए जाते हैं; जैसे कजली, होली, चैता और बारहमासा आदि। जिस ऋतु के जो गीत हैं, वे उसी ऋतु में गाए जाने पर आनन्ददायक होते हैं।

कजली सावन के मन-भावन महीने में गाई जाती है। इस मास में आकाश में छाये हुए मेघों की कालिमा के कारण ही इन गीतों का नाम 'कजली' पड़ गया है। काजल—जो काला होता है—शब्द से 'कजली' शब्द की उत्पत्ति हुई है। सावन के दिनों में प्रत्येक गाँव में झूले पड़ जाते हैं। उन पर झूला झूलती हुई स्त्रियाँ कजली के गीत गाती हैं।

यों तो प्रत्येक गाँव में कजली गाई जाती है, परन्तु मिर्ज़ापुर की 'कजली' बड़ी प्रसिद्ध है। यहाँ सावन के महीने में कजली के दंगल भी हुआ करते हैं, जिसमें बड़े-बड़े गवैये भाग लेते हैं और गाने का यह क्रम कई दिनों तक चलता रहता है। कजली के गीतों में बड़ी मनोरमता तथा

हृदयद्रावकता होती है, जिसे सुनकर श्रोतागण मुग्ध हो जाते हैं। एक गीत देखिए :

"झूला झूले राधिका प्यारी,
संग में कृष्ण मुरारी ना।
कथि के पालना कथि के डोरी,
कथि के गद्दिया ना।
सोने के पालना रेसम के डोरी,
चनन के गद्दिया ना।
झूला झूले राधिका प्यारी,
संग में कृष्ण मुरारी ना।"

कजली की एक दूसरी कड़ी देखिए, जो बहुत ही लोकप्रिय है :

"कइसे खेले जाइं हम सावन में कजरिया,
बदरिया घिरि आइल ननदी।"

फगुआ—इसे 'होली' भी कहते हैं, परन्तु भोजपुरी-प्रदेश में यह 'फगुआ' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। 'फगुआ' फागुन के महीने में गाया जाता है। यों तो पूरे फागुन के महीने में गवैये 'फगुआ' गाते हैं, परन्तु होली के दिन इसे गाने का विशेष प्रचार है। उस दिन दो दल आमने-सामने बैठकर बड़ी उमंग के साथ होली गाते हैं। दल का नेता पहली कड़ी को गाता है और शेष लोग दूसरी कड़ी को उसके बाद गाते हैं। जैसे नेता इस कड़ी को पहले गायगा :

"आजु सदा सिव खेलत होरी"

इस के बाद दूसरे दल के लोग गायेंगे—

"जटा-जूट में गंग विराजे,
अंग में भसम रमोरी।"

इसी प्रकार यह सम्मिलित गान (कोरस) बहुत देर तक चलता रहता है। गवैये बड़ी मस्ती से होली के गीत गाते हैं। होली के गीत का एक उदाहरण लीजिए :

"व्रज में हरि होरी मचाई।
इतते आवत नवल राधिका, उतते कुँवर कन्हाई।
हिलि-मिलि फाग परसपर खेलत, सोभा बरनि न जाई।
आरे घरे घरे बजत बधाई।"

चैता—चैत्र के महीने में गाए जाने वाले गीतों को 'चैता' कहते हैं। ये 'घाटो' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। चैता दो प्रकार होता है—(१) झलकुटिया (२) साधारण। झलकुटिया चैता उसे कहते हैं जो सामूहिक रूप से 'झाल' कूटकर (बजाकर) गाया जाता है। साधारण चैता वह है जिसे केवल एक ही व्यक्ति बिना किसी वाद्य की सहायता से गाता है। चैता गाने की पद्धति भी वही है जो होली गाने की है। इसके गाने में आरोह-अवरोह का बड़ा सुन्दर क्रम होता है। इस गीत में प्रथम आरोह होता है, उसके पश्चात् अवरोह। यह आरोह भी क्रमिक होता है। इस प्रकार चैता के गाने का एक विशेष ढंग होता है।

चैता की प्रथम पंक्ति में पहले 'आहो रामा' या 'रामा' और अन्त में 'हो रामा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इन गीतों के रचयिता बुलाकीदास हैं। इनके नाम से अनेक 'घाटो' या 'चैता' प्रसिद्ध हैं।

चैता के गीतों में सम्भोग श्रृंगार का पुट अधिक पाया जाता है। इनमें वह हृदय-द्रावकता है जो अन्य किसी गीत में नहीं पाई जाती। चैत का महीना, श्रृंगार रस का वर्णन, मधुर राग तथा कोमल कल-कण्ठ—इन सबके संयोग से यह गीत बड़ा मनोहारी होता है। यह चैता कितना हृदयहारी है इसे तो सहृदय ही समझ सकते हैं :

'आहो रामा सूतल रहलीं, पिया सँगे सेजिया हो रामा।
विरही मोहलिया सबद सुनावे हो रामा॥
विरही कोइलिया।
आहो रामा गोड़ तोर लागेनी बाबा के बहेलिया हो रामा।
विरही मोहलिया, मारि ले आउ हो रामा॥
विरही कोइलिया।"

बारहमासा—बारहमासा उन गीतों को कहते हैं जिनमें किसी विरहिणी की प्रत्येक मास में होने वाली विरह-वेदना का वर्णन होता है। किन्हीं-किन्हीं गीतों में बारह महीनों के स्थान पर केवल छः महीनों का ही वर्णन होता है। बारहमासा लिखने की प्रथा बड़ी प्राचीन जान पड़ती है। जायसी ने 'पद्मावत' में नागमती का वियोग-वर्णन 'बारहमासा' में किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि तत्कालीन लोक-साहित्य में वियोग-वर्णन में बारहमासा लिखने की जो प्रथा थी उसीका अनुकरण जायसी ने किया है। लोक-साहित्य में बारहमासा का वर्णन उद्दीपन रूप में ही किया गया है। आजकल इस गीत के गाने का उतना प्रचार नहीं है जितना अन्य गीतों का। इसकी रचना का प्रवाह भी कुछ मन्द पड़ गया है। इसका कारण विभिन्न मासों के वर्णन करने की क्षमता का अभाव ही समझना चाहिए।

जाति-सम्बन्धी गीत

भोजपुरी में कुछ ऐसे भी लोक-गीत हैं जिन्हें एक जाति-विशेष के लोग ही प्रधानतया गाते हैं। जैसे विरहा अहीर लोगों का राष्ट्रीय गान है, और 'पचरा' को दुःसाध (हरिजन) लोग ही गाते हैं। जो अहीर जितना अधिक विरहा गाता है उसकी योग्यता उतनी ही अधिक समझी जाती है। इन लोगों के विवाह में विरहा गाने की प्रतियोगिता हुआ करती है। 'विरहा', जैसा कि इसके नाम से ही प्रतीत होता है 'विरह' शब्द से बना हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि पहले 'विरहा' में केवल विरह का वर्णन हुआ करता था, परन्तु आजकल सभी वस्तुएँ इस गीत के वर्ण्य विषय हैं। विरहा आकार में तो छोटा होता है परन्तु हृदय के ऊपर इसका प्रभाव गम्भीर होता है। डॉ० ग्रियर्सन ने इन विरहों की बड़ी प्रशंसा की है। इनमें रस की प्रचुरता के साथ ही अलंकार का विधान पाया जाता है। नीचे के विरहे में यमक तथा श्लेषालंकार का प्रयोग कितनी सुन्दर रीति से किया गया है :

"रसवा के भेजली भँवरवा के संगिया
रसवा ले अइले हा घोर।
अतना ही रसवा में केकरा के बँटबों,
सगरी नगरी हित मोर॥"

पूर्वानुराग के विरह से पीड़ित किसी विरहिणी का यह चित्रण कितना मार्मिक है :

'पिया पिया कहत पियर भइली देहिया
लोगवा कहेला पिंड रोग।
गऊँवा के लोगवा मरमिया ना जानेला,
भइले गवनवा ना मोर॥"

चमार लोग भी एक विशेष प्रकार का गीत गाते हैं। इनका मुख्य बाजा 'डफरा' और 'पिपिहरी' है। 'पिपिहरी' मुँह से बजाई जाती है। इधर बाजा बजता है और उधर गाना होता रहता है। 'कहार' जाति के लोगों का प्रधान पेशा पानी भरना और पालकी ढोना होता है। ये लोग जो गीत गाते हैं वह 'कहरवा' के नाम से प्रसिद्ध है। तेली लोग भी अपना जातीय गीत गाते हैं जिसमें 'कोल्हू' का वर्णन प्रधान होता है। धोबी लोग 'हुडुक' या 'हुडुका' नामक बाजा बजाते हुए गाते हैं। दुःसाध लोगों द्वारा गाये जाने वाले गीतों को 'पचरा' कहते हैं। इन गीतों में देवी की आराधना की जाती है। जाति-सम्बन्धी गीतों में 'पचरा' बड़ा प्रसिद्ध है। यह गीत के अतिरिक्त मन्त्र का भी काम करता है। दुःसाध जाति में यदि कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है तो इस जाति का नेता या 'ओझा' इन्हीं गीतों को गाकर उसकी बीमारी को दूर करता है।

व्रत-सम्बन्धी गीत

स्त्रियाँ विभिन्न मासों में व्रतों के अवसर पर भिन्न-भिन्न गीतों को गाती हैं। जैसे भादों के महीने में बहुरा के गीत, और कार्तिक मास में

छठी माता के गीत गाए जाते हैं। चैत के महीने में जब किसी बालक को चेचक निकल आती है तब उसकी शान्ति के लिए जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'शीतला माता के गीत' कहते हैं। चेचक रोग की अधिष्ठातृ देवी 'शीतला देवी' मानी जाती हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस देवी की प्रार्थना करने तथा इसकी स्तुति में गीत गाने से यह रोग दूर हो जाता है। इस गीत का वर्ण्य विषय शीतला देवी की प्रशंसा है। चेचक से पीड़ित बालक की माता की शीतला से प्रार्थना बड़ी हृदयद्रावक है। ये गीत करुण रस से ओत-प्रोत हैं।

श्रावण शुक्ला पंचमी को 'नाग पंचमी' कहते हैं। इस दिन नाग अर्थात् सर्प की पूजा की जाती है। इन गीतों में नाग की पूजा करने का उल्लेख पाया जाता है। भाद्र कृष्णा चतुर्थी को स्त्रियाँ 'बहुरा' का व्रत करती हैं। यह 'बहुला' भी कहा जाता है। इस अवसर पर गाए जाने वाले गीत 'बहुरा के गीत' कहलाते हैं। स्त्रियाँ इस व्रत को पुत्र की मंगल-कामना के लिए किया करती हैं। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को स्त्रियाँ 'गोधन' का त्यौहार मनाती हैं। इस दिन 'गोधन' की पूजा होती है। इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहन में प्रेम-भावना की वृद्धि है। 'पिड़िया' का व्रत कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर अगहन शुक्ला प्रतिपदा तक पूरे एक मास रहता है। गोबर के छोटे-छोटे पिण्डों को 'पिड़िया' कहते हैं। इन गीतों में भाई-बहन के अटूट प्रेम का वर्णन रहता है। यह व्रत भाई के प्रति बहन के अलौकिक प्रेम का प्रतीक है। कोई बहन कहती है : '**तोहरी बधइया भइया पिड़िया बरतिया हो।**' कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को 'छठी माता' का व्रत होता है। पुत्र की प्राप्ति के लिए यह व्रत किया जाता है। इसमें सूर्य की पूजा की जाती है। अतएव इसे 'सूर्य षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। वन्ध्या स्त्रियाँ इस व्रत को विशेष रूप से करती हैं। कोई ऐसी ही स्त्री पुत्र की भिक्षा माँगती हुई कहती है कि :

'**खोरिया रउरी बहारबि, पूतवा भो खि वों।**"

क्रिया-सम्बन्धी गीत

किसी काम को करते समय जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें 'क्रिया-गीत' कहते हैं। ये गीत श्रम के भार को भुलाने अथवा दूर करने के लिए गाए जाते हैं। इन गीतों में जतसार, सोहनी तथा रोपनी के गीत परिगणित हैं। स्त्रियाँ चक्की पीसते हुए, अपने परिश्रम को हल्का करने के लिए जो गीत गाती हैं, उन्हें जाँत के गीत या 'जँतसार' कहते हैं। इन गीतों का प्रधान रस करुण तथा श्रृंगार है। इनमें कहीं तो प्रिय-विहीना, दुःखिनी विधवा का करुण क्रन्दन सुनने को मिलता है, तो कहीं वन्ध्या स्त्री की मनोवेदना का वर्णन पाया जाता है। कहीं किसी विरहिणी की विरह-दशा का उल्लेख है, तो कहीं सास के द्वारा वधू की नारकीय यन्त्रणा का चित्रण। जाँत के गीतों में करुण रस की सरिता अविच्छिन्न रूप से बहती दिखाई देती है।

बिहार राज्य के आरा (शाहाबाद) जिले में—जहाँ धान की पैदावार अधिक होती है—रोपनी के गीतों का अधिक प्रचलन है। धान को रोपते समय सामूहिक रूप से रोपने वाली स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं, उन्हें 'रोपनी के गीत' कहते हैं। खेत में जमे हुए घास की निराई करते समय गाये जाने वाले गीत 'सोहनी के गीत' कहलाते हैं। ये गीत किसी संक्षिप्त कथानक को लेकर लिखे गए होते हैं। इन गीतों में कहीं मुग़लों के अत्याचारों का वर्णन है, तो कहीं उनसे लड़कर किसी अबला का उद्धार करने वाले किसी वीर पुरुष का।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी फुटकर गीत हैं, जिनका अन्तर्भाव ऊपर लिखी गई किसी भी श्रेणी में नहीं होता। ये गीत हैं—झूमर, अलचारी, पूर्वी और भजन। इनमें झूमर बहुत प्रसिद्ध हैं, जो झूम-झूमकर प्राय. प्रत्येक अवसर पर गाया जाता है। 'पूर्वी' का उल्लेख आगे किया जायगा। भक्ति-सम्बन्धी गीतों को 'भजन' कहते हैं।

लोक-गाथा

लोक-गाथा उन गीतों को कहते हैं, जिनकी कथा-वस्तु लम्बी होती है। इनमें किसी बड़े कथानक को लेकर पद्य के रूप में उसे निबद्ध किया जाता है। इनमें कथा की ही प्रधानता रहती है, अन्य वस्तुओं की नहीं। इस प्रकार लोक-गीतों से लोक-गाथाओं का पार्थक्य स्पष्ट है। लोक-गीतों को हम गेय गीत (लिरिक) कह सकते हैं। लोक-गाथाएँ अँग्रेजी शब्द 'बैलेड' के अर्थ को द्योतित करती हैं।

भोजपुरी में ऐसे बहुत-से गीत हैं, जिनकी कथा-वस्तु बहुत बड़ी है। ऐसे गीतों को लोक-गाथा का नाम दिया गया है। इन गीतों में लोरकी, विजयमल, नयकवा बनजारा, भरथरी, गोपीचन्द, सोरठी और आल्हा के गीत प्रसिद्ध हैं। इनके कथानक को लेकर महाकाव्य के रूप में मोटी-मोटी पुस्तकें पद्य में लिखी गई हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख अगले पृष्ठों में किया जायगा। इन लोक-गाथाओं में आल्हा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसके रचयिता का नाम जगनिक था, जिनका मूल ग्रन्थ बुन्देलखण्डी में लिखा गया था। आज आल्हा के मूल रूप का पता नहीं चलता। परन्तु इसके कन्नौजी और भोजपुरी पाठ (वर्णन) आज भी उपलब्ध हैं। भरथरी—गोपीचन्द में राजा भर्तृहरि की कथा का बड़े ही सरस शब्दों में वर्णन किया गया है। अनेक जोगी (एक प्रकार के साधु) सारङ्गी बजाकर राजा भरथरी के गीत गाकर भिक्षा की याचना किया करते हैं।

इन लोक-गाथाओं की दस निजी विशेषताएँ हैं, जिनका विस्तृत वर्णन इन पंक्तियों के लेखक ने अपने 'भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन' नामक निबन्ध (थीसिस) में किया है, जो हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है।

लोक-कथा

भोजपुरी-साहित्य में कथाओं की संख्या बहुत अधिक है। घर की बूढ़ी दादियों को लोक-कथाओं का अक्षय भण्डार समझना चाहिए। अभी तक भोजपुरी लोक-कथाओं का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। वर्तमान लेखक ने सैकड़ों भोजपुरी कथाओं का संग्रह किया है। बिहार-राज्य के चम्पारन जिले के निवासी पं० गणेश चौबे ने भी कुछ कथाओं को संग्रहीत करके उन्हें काल के गाल में जाने से बचाया है।

भोजपुरी में जो लोक-कथाएँ उपलब्ध हैं, उन्हें हम निम्नांकित श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) उपदेश-कथा, (२) हास्य-कथा, (३) व्रत-कथा, (४) प्रेम-कथा, (५) सामान्य कथा।

डॉ० दिनेशचन्द्र सेन ने अपने 'फ़ोक लिटरेचर आफ़ बंगाल' नामक ग्रन्थ में लोक-कथाओं के निम्नांकित भेदों का उल्लेख किया है—

(१) रूप-कथा (भूत-प्रेत तथा देवी-देवताओं की कथा);
(२) हास्य-कथा (हँसी उत्पन्न करने वाली कथाएँ);
(३) व्रत-कथा (धार्मिक कहानियाँ);
(४) गीत-कथा (बच्चों को सुलाने वाली कहानियाँ)।

भारतीय कथा-साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। 'दीघ निकाय' के ब्रह्म-जाल सुत्त में एक स्थान पर कथाओं के जो भेद दिये गए हैं, उनसे प्राचीन कथाओं की व्यापकता स्पष्टतया प्रतीत होती है। वे भेद इस प्रकार हैं—

१. राज कथा, २. चोर कथा, ३. महामात्र कथा, ४. सेना कथा, ५. भय कथा, ६. युद्ध कथा, ७. अन्न कथा, ८. पान कथा, ९. वस्त्र कथा, १०. शयन कथा, ११. माला कथा, १२. गन्ध कथा, १३. ज्ञाति कथा, १४. यान कथा, १५. ग्राम कथा, १६. निगम कथा, १७. नगर-कथा, १८. जनपद कथा, १९. स्त्री कथा, २०. पुरुष कथा, २१. शूर कथा, २२. विशिखा कथा (बाज़ार की गप्पें), २३. कुम्भ-स्नान

कथा (पनघट की कथाएँ), २४. पूर्व-प्रेत-कथा (मृत लोगों की कहानियाँ), २५. निरर्थक कथा, २६. लोकाख्यायिका और (२७) समुद्राख्यायिका ।

भोजपुरी लोक-कथाएँ प्रधानतया गद्य में हैं। कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं, जो संस्कृत के चम्पू-काव्य की भाँति गद्य-पद्य-मिश्रित भाषा में लिखी गई हैं। इन लोक-कथाओं की वर्णन-शैली बड़ी सरल है। इनकी भाषा सरस होती है, जिससे सुनते ही सारी बातें समझ में आ जाती हैं।

भोजपुरी लोक-कथाओं में अधिकांश कथाओं का मूल रूप संस्कृत के कथा-साहित्य में पाया जा सकता है। भोजपुरी में प्रसिद्ध 'ठनठनपाल' की कथा बौद्ध जातकों में प्रायः उसी रूप में प्राप्त होती है। यदि इन कथाओं का अध्ययन किया जाय, तो बहुत-सी कथाओं के मूल रूप का पता लगाया जा सकता है।

इन कथाओं को सर्वप्रथम संग्रहीत करने का श्रेय यूरोपीय विद्वानों को प्राप्त है। सन् १८८५ ई० में डॉ० ग्रियर्सन का 'बिहार पीज़ेण्ट लाइफ़' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। प्रायः इसी समय डॉ० फ़ैलन का 'डिक्शनरी आफ़ हिन्दुस्तानी प्रोवर्स' प्रकाश में आया। तत्पश्चात् जॉन क्रिश्चियन का 'बिहार प्रोवर्स' निकला। इन ग्रन्थों में जहाँ कहीं भी ऐसी कहावतें आई हैं, जिनकी पृष्ठभूमि में कोई लोक-कथा है, उसका संक्षेप में उल्लेख किया गया है। इधर बिहार-राज्य के आरा जिले के एक अध्यापक श्री ए० बनर्जी ने 'फ़ोक टेल्स ऑफ़ बिहार' के नाम से भोजपुरी की दस लोक-कथाओं का संग्रह प्रकाशित किया है। परन्तु उपर्युक्त ये सब कार्य अभी तक अंग्रेज़ी भाषा में ही किये गए हैं। भोजपुरी लोक-कथाओं का वैज्ञानिक पद्धति से संग्रह तथा सम्पादन करके प्रकाशित करने की नितान्त आवश्यकता है। आशा है, प्रस्तुत लेखक द्वारा किया गया भोजपुरी-कथा-संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

प्रकीर्ण साहित्य

भोजपुरी में हजारों मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, सुभाषित, घाघ और भडरी की उक्तियाँ और पहेलियाँ प्रचलित हैं, जो लोक-साहित्य के उपर्युक्त श्रेणी-विभाग के अन्तर्गत नहीं आतीं। अतएव इनको प्रकीर्ण-साहित्य के अन्तर्गत रखा गया है। इन कहावतों तथा लोकोक्तियों के अध्ययन से भोजपुरी समाज की अवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। भोजपुरी की एक कहावत है '**तसलवा तोर कि मोर**' इससे वहाँ के निवासियों की वीरता का परिचय मिलता है। भोजपुरियों का दृष्टिकोण कितना उपयोगितावादी है, इसकी झलक नीची लिखी लोकोक्ति में पाई जाती है—'**बुढ़ऊ के खाईल अवरु नाव के भराइल**' अर्थात् बूढ़े का खाना और नाव का डूब जाना बराबर है। घाघ और भडरी की उक्तियों में कृषि-सम्बन्धी अनुभव की बातें कही गई हैं। इन उक्तियों का संग्रह तथा प्रकाशन पं० रामनरेश त्रिपाठी ने किया है। भोजपुरी में ऐसी बहुत-सी पहेलियाँ या 'बुझौवल' प्रचलित है, जिन्हें लड़के एक-दूसरे से पूछकर अपना मनोरञ्जन किया करते हैं। डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट्; प्राध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय ने भोजपुरी कहावतों, मुहावरों और पहेलियों का संग्रह करके कुछ वर्ष हुए प्रयाग की 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित किया था। परन्तु इनका पुस्तकाकार प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त बहुत-से ऐसे खेल प्रचलित हैं, जिन्हें खेलते समय बालक गीतमयी पंक्तियों को दुहराते रहते हैं। जैसे कबड्डी खेलते समय की ये पंक्तियाँ हैं :

"ए कबड्डिया रेता, भगत मोरा बेटा।
भगताइन मोर बेटी, खेलबि हम होरी ॥

इसी प्रकार भोजपुरी का प्रकीर्ण साहित्य भी कुछ कम नहीं है।

यूरोपीय विद्वानों द्वारा लोक-साहित्य का संग्रह

आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व यूरोपीय विद्वानों का ध्यान भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह की ओर आकर्षित हुआ था। उस समय जब इस देश में लोक-साहित्य के संग्रह की चर्चा भी नहीं थी। इन विद्वानों का यह कार्य सचमुच सराहनीय है। इन लोगों ने लोक-गीतों के महत्त्व को समझा और इनका संग्रह करके वैज्ञानिक रीति से इनका सम्पादन किया। इनके द्वारा प्रस्तुत संग्रह आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि इस देश में, विशेषकर भोजपुरी प्रदेश में—लोक-गीतों तथा लोक-कहानियों का संग्रह सर्वप्रथम इन्हीं विद्वानों ने किया। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को याद है भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह का कार्य सर्वप्रथम डॉ० सर ग्रियर्सन ने प्रारम्भ किया था। इन्होंने १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अनेक भारतीय तथा यूरोपीय शोध-पत्रिकाओं में भोजपुरी के गीतों का संग्रह प्रकाशित किया। डॉ० ग्रियर्सन के अतिरिक्त विलियम कुक, ग्राउ्स, इरविन और फ्रेजर आदि सज्जनों ने भी लोक-गीतों का संग्रह किया। इनके संग्रह के सम्बन्ध में यह कथन अनुपयुक्त न होगा कि इन्होंने लोक-गीतों के संग्रह की कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं लिखी, बल्कि पत्र-पत्रिकाओं में इसके संग्रह प्रकाशित किये हैं। आज इनके संग्रह का पता लगाना भी कुछ आसान नहीं है। परन्तु अनु-सन्धान द्वारा इनकी कृतियों का जितना पता चला है उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ उपस्थित किया जाता है।

डॉक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन

डॉ० ग्रियर्सन ने भोजपुरी लोकगीतों के संग्रह के सम्बन्ध में बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया है। इन्होंने सन् १८८४ ई० में इंगलैण्ड की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में कुछ 'बिहारी लोक-गीतों' का

संग्रह प्रकाशित किया था।[1] ये गीत बिहार राज्य के आरा और पटना जिलों से इकट्ठे किये गए थे। अतः प्रधानतया ये भोजपुरी के ही गीत हैं। इनमें से कुछ गीतों में मगही का भी पुट पाया जाता है, परन्तु उनकी आत्मा भोजपुरी ही है। इस लेख के आरम्भ में बिहार राज्य की तीन प्रधान बोलियों—मगही, मैथिली और भोजपुरी का थोड़ा-सा विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् सोहर, जतसार, झूमर आदि गीत दिये गए हैं। इन गीतों का अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ है।

डॉ० ग्रियर्सन का दूसरा लेख इसी पत्रिका में 'भोजपुरी लोक-गीत' के नाम से प्रकाशित हुआ था।[2] इस लेख के प्रारम्भिक आठ पृष्ठों में लेखक ने भोजपुरी भाषा की विशेषता, उसके साहित्य तथा गीतों के छन्द आदि के विषय में सुन्दर प्रकाश डाला है।[3] इस लेख में कुल मिलाकर ४९ गीतों का संग्रह किया गया है, जिनमें केवल विरहों की संख्या ४२ है। इसके पश्चात् घाटो या चैता और जतसार के भी गीत हैं। इस लेख में गीतों के मूल पाठ के साथ उनका अंग्रेजी में अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है। विद्वान् लेखक ने गीतों के अन्त में टिप्पणियाँ भी दी हैं, जिनमें गीत में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति, उनके विभिन्न अर्थ आदि विषयों का विवेचन बड़ी मार्मिक रीति से किया गया है। स्थान-स्थान पर इतिहास तथा भूगोल-सम्बन्धी टिप्पणियाँ भी पाई जाती हैं।

डॉ० ग्रियर्सन ने सन् १८८४ ई० में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में सुप्रसिद्ध 'विजयमल' की लोक-गाथा को प्रकाशित किया था।[4] यह गीत बिहार राज्य के शाहाबाद जिले से प्राप्त किया गया

१. जनरल आॅफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग १६ (सन् १८८४ ई०), पृ० १६६
२. वही, भाग १८ (सन् १८८६ ई०) पृ० २०७
३. वही, भाग १८ (सन् १८८६ ई०) पृ० २०७–२१४
४. जे० ए० एस० बी० भाग ५३ (सन् १८८४ ई०) खण्ड ३ पृ० ९४ (दि सांग आफ विजयमल)

था। 'विजयमल' भोजपुरी भाषा का महाकाव्य है, जो ११३८ पंक्तियों में समाप्त हुआ है। ग्रियर्सन ने मूल के साथ ही इस पूरी लोक-गाथा का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया है। स्थान-स्थान पर पाद-टिप्पणियाँ भी पाई जाती हैं, जो महत्त्वपूर्ण हैं, इसी पत्रिका के एक दूसरे अंक में इन्होंने 'राजा गोपीचन्द के गीत के दो विभिन्न पाठों' को संग्रहीत किया है।[1] राजा गोपीचन्द की कथा बड़ी प्रसिद्ध है और इसका प्रचार भोजपुरी प्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी पाया जाता है। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इनके गीत विभिन्न रूप में पाये जाते हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने बिहार राज्य के मगध तथा भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित इस गीत के विभिन्न पाठों (वर्शन्स) को एकत्रित किया है। इस गीत का भी अंग्रेजी अनुवाद पाद-टिप्पणियों के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसी पत्रिका के एक अन्य अंक में इन्होंने 'मानिकचन्द का गीत' शीर्षक एक लेख लिखा है।[2] यह लेख बड़ा लम्बा है। मानिकचन्द राजा गोपीचन्द के पिता थे। अतः इस लेख में गोपीचन्द के जीवन आदि के सम्बन्ध में भी प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

इसी विद्वान् ने 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' नामक पत्रिका में 'आल्हा के विवाह के गीत' को प्रकाशित किया है।[3] भोजपुरी प्रदेश में आल्हा के गीत बहुत ही प्रसिद्ध हैं तथा बड़े चाव से गाये जाते हैं। यह गीत भोजपुरी खण्ड-काव्य है, जो ५५८ पंक्तियों में समाप्त हुआ है। इस लेख में आल्हा की ऐतिहासिकता पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसी पत्रिका में लेखक ने 'आल्ह खण्ड' का सम्पूर्ण कथानक संक्षेप में उपस्थित

१. वही—भाग ५४ (सन् १८८५ ई०) खण्ड १ पृ० ३५ (टू वर्शन्स आफ दि सांग आफ गोपीचन्द)
२. बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियण्टल स्टडीज, लन्दन इन्स्टीट्यूट भाग १, खण्ड ३ (१९२०), पृ ८७।
३. जे० ए० सो० बं०, भाग १३ (१८७८), खण्ड १, नं० ३ (दि सांग आफ मानिकचन्द)।

किया है[1] जिससे आल्हा के पूरे जीवन-चरित को जानने में बड़ी सहायता मिलती है। लन्दन की प्राच्य-विद्या-परिषद् की पत्रिका में डॉक्टर ग्रियर्सन ने 'उत्तरी भारत का लोक-साहित्य' नामक एक लेख प्रकाशित किया है, जिसमें भोजपुरी भाषा के भी अनेक गीत सम्मिलित हैं।[2] इस लेख में डॉ० ग्रियर्सन ने उत्तरी भारत में प्रसिद्ध तुलसी और सूर की कविताओं का उदाहरण देते हुए भोजपुरी के कुछ गीतों को भी उद्धृत किया है। इस गीत में भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित भगवती देवी और बस्तीसिंह के सुप्रसिद्ध लोक-गीत भी संग्रहीत हैं। इन लेखों के अतिरिक्त डॉ० ग्रियर्सन ने जर्मन भाषा की सुप्रसिद्ध शोध-पत्रिका में 'नयवका बनजारा' शीर्षक लोक-गाथा को संग्रहीत कर प्रकाशित किया है।[3] यह गाथा बड़ी विस्तृत है तथा इस प्रदेश में बड़ी लोकप्रिय है।

ह्यूज फ्रेज़र—यह उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के जिलाधीश थे। इन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में गोरखपुर जिले में प्राप्त भोजपुरी गीतों का संग्रह प्रकाशित किया है।[4] इन गीतों की संख्या १३ है। इनका अंग्रेजी अनुवाद भी फ्रेज़र ने किया है, जो गीतों के साथ ही प्रकाशित हुआ है।

जे० *बीम्स* ने 'भोजपुरी भाषा पर टिप्पणियाँ' शीर्षक लेख प्रकाशित किया था।[5] ये भोजपुरी व्याकरण के उत्कृष्ट विद्वान् थे। इस लेख में भोजपुरी व्याकरण का विवेचन करने के साथ ही कुछ इसके गीतों को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है।

---

१. इण्डियन एण्टिक्वेरी भाग १४ (१८८५), पृ०२०९।

२. वही······पृ० २५५।

३. ज़ेड० डी० एम० डी०, भाग ४३, खण्ड ३ (१८८९), पृ० ४६८।

४. ज० ए० सो० बं०, भाग ५२ (१८८३) पृ० १।

५. ज० ए० सो० बं०, भाग ३, न्यू सीरीज़ (१८६८), पृ० ४८३ (नोट्स आन दि भोजपुरी डायलेक्ट आफ हिन्दी एज़ स्पोकेन इन वेस्टर्न बिहार)।

ए० जी० शिरेफ—ये उत्तर प्रदेश के एक अंग्रेज़ सिविलियन थे। कुछ दिनों तक ये जौनपुर जिले के जिलाधीश भी थे। पं० रामनरेश त्रिपाठी के सम्पर्क से सम्भवतः आपका ध्यान लोक-गीतों की ओर आकर्षित हुआ। इन्होंने 'हिन्दी फोकसौंग्स' नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें भोजपुरी के १६ गीतों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।[1] इस पुस्तक में अनुवाद के साथ मूल गीत भी दिये गए हैं। इस प्रकार लोक-गीतों के सर्वप्रथम संग्रह का श्रेय इन्हीं विदेशी विद्वानों को प्राप्त है।

भारतीय विद्वानों द्वारा लोक-साहित्य का संकलन

यह हर्ष का विषय है कि भारतीय विद्वानों का ध्यान लोक-गीतों के संग्रह की ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहा है। हिन्दी-भाषा के लोक-गीतों के सर्वप्रथम संग्रह का श्रेय पं० रामनरेश त्रिपाठी को प्राप्त है, जिन्होंने बड़े परिश्रम से हिन्दी प्रान्तों में घूम-घूमकर इन गीतों का संग्रह किया। त्रिपाठीजी का यह संकलन 'कविता-कौमुदी' भाग ५ (ग्राम-गीत) के नाम से प्रकाशित हुआ है।[2] यद्यपि इस ग्रन्थ में हिन्दी की सभी बोलियों—व्रज, अवधी आदि—के गीतों का संग्रह किया गया है, परन्तु भोजपुरी लोक-गीतों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। पुस्तक के प्रारम्भ में १३८ पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका भी लिखी गई है, जिसमें लोक-गीतों का परिचय दिया गया है। 'सोहर' त्रिपाठी जी की दूसरी पुस्तक है, जिसमें इन्होंने पुत्र-जन्म के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों का संग्रह प्रकाशित किया है।[3] 'हमारा ग्राम-साहित्य' शीर्षक ग्रन्थ में त्रिपाठीजी ने ग्राम-साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए विभिन्न प्रकार के लोक-गीतों का उदाहरण दिया है। इसके अतिरिक्त घाघ और भड्डुरी की सूक्तियाँ भी संग्रहीत हैं। इस प्रकार त्रिपाठीजी की पुस्तकों में भोजपुरी

१. हिन्दी मन्दिर प्रयाग (१९३६) से प्रकाशित।
२. आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
३. वही।

के अनेक गीत पाए जाते हैं।

भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह के क्षेत्र में इस ग्रन्थ के लेखक ने भी विनम्र प्रयास किया है। प्रस्तुत लेखक के लोक-गीतों का संकलन 'भोजपुरी-ग्राम-गीत' के नाम से सं० २००० वि० में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था।[१] लेखक का यह संग्रह विभिन्न प्रकार के भोजपुरी लोक-गीतों के संकलन का प्रथम सर्वाङ्गीण प्रयत्न है। इस पुस्तक में संग्रहीत गीतों का संकलन भोजपुरी प्रदेश के गाँव-गाँव में घूमकर बड़े परिश्रम से किया गया है। पुस्तक की भूमिका (लगभग १०० पृष्ठों की) पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य, रीडर, संस्कृत-विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ने लिखी है। जिसमें भोजपुरी भाषा और साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

इस संग्रह में कुल २७१ लोक-गीतों का संकलन है। ये गीत संस्कार और ऋतु-क्रम से निम्नांकित १५ भागों में विभक्त हैं—सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक-परिहास, गवना, जाँत, छुटी माता, शीतला-माता, झूमर, बारहमासा, कजली, चैता, बिरहा और भजन। इस पुस्तक का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है। प्रसंग के साथ गीत को लिखकर खड़ी बोली में उसका अनुवाद भी लेखक ने दिया है। पाद-टिप्पणियों में कठिन शब्दों के अर्थ भी हैं। पुस्तक के अन्त में भोजपुरी-शब्द-कोष भी दिया है। इस प्रकार भोजपुरी लोक-गीतों का यह सर्वप्रथम वैज्ञानिक संग्रह है।

प्रस्तुत लेखक की दूसरी कृति 'भोजपुरी-ग्राम-गीत' भाग २ है। इस ग्रन्थ की भूमिका प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइस-चान्सलर डॉ० अमरनाथ झा ने लिखी है। इस पुस्तक में ४३० लोक-गीतों का संकलन किया गया है। ये गीत निम्नलिखित २५ प्रकार के हैं—सोहर,

१. हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २०००) से प्रकाशित। इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण सम्मेलन द्वारा सं० २०११ में प्रकाशित हुआ है।

जोग, सेहला, विवाह, बहुरा, पिड़िया, गोधन, नागपंचमी, जतसार, झूमर, कजली, बारहमासा, होली, डफ, चैता, सोहनी, रोपनी, विरहा, काँहार, गोड़, पचरा, निगुंन, देशभक्ति, पूर्वी, पारांती और भजन। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठों की टिप्पणियाँ दी गई हैं, जिनमें गीतों में आये हुए विषयों तथा शब्दों को लेकर भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा भाषा-शास्त्र-सम्बन्धी विवेचन किया गया है। सम्भवतः इतने विभिन्न प्रकार के भोजपुरी-लोक-गीतों का संग्रह इस ग्रन्थ को छोड़कर अन्यत्र नहीं है।

प्रस्तुत लेखक ने अपने लोक-गीतों को संग्रह के दौरे के समय भोजपुरी लोक-गीतों के संकलन के अतिरिक्त अनेक लोक-गाथाओं तथा सैकड़ों लोक-कथाओं का भी संग्रह किया। ये लोक-गाथाएँ वे प्रबन्धात्मक गीत हैं, जो भोजपुरी प्रदेश में बड़े चाव से गाए जाते हैं। इन गाथाओं में विजयमल, आल्हा, लोरकी, सोरठी, बिहुला और नयकवा बनजारा बहुत प्रसिद्ध हैं। सैकड़ों लोक-कहानियों का भी संग्रह प्रस्तुत लेखक ने किया है, जो बड़ी ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं। इन लोक-गाथाओं और कथाओं का संग्रह अभी प्रकाशित नहीं हुआ है, परन्तु आशा है कि ये दोनों संग्रह शीघ्र ही प्रकाश में आ जायँगे।

लेखक ने भी बड़े परिश्रम से भोजपुरी लोक-गीतों की स्वर-लिपि (नोटेशन) भी तैयार की है। यह स्वर-लिपि पेशे वाले गवैयों के द्वारा गीतों को गवाकर तैयार की गई है। भोजपुरी में जितने भी प्रकार के गीत हैं, उनके सभी प्रधान भेदों (टाइप) को लेकर स्वर-लिपि प्रस्तुत की गई है। सम्भवतः हिन्दी की किसी भी जनपदीय भाषा के लोक-गीतों की स्वर-लिपि प्रस्तुत करने का प्रयास अभी नहीं हुआ है। अतः इस दिशा में लेखक का सम्भवतः यह सर्वप्रथम विनम्र प्रयत्न है। 'भोजपुरी-लोक-संगीत'-सम्बन्धी यह पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

श्री दुर्गाशंकरप्रसादसिंह ने 'भोजपुरी लोक-गीतों में करुण रस' के

नाम से एक संग्रह प्रकाशित किया है।[1] इस संग्रह में सोहर, जँतसार, झूमर, कहरुआ, भजन, बारहमासा, अलचारी, खेलवना, विवाह, पूर्वी, कजरी, रोपनी और निराई आदि के गीत संकलित हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में विद्वान् लेखक ने ८० पृष्ठ की भूमिका भी दी है, जिसमें भोजपुरी भाषा और साहित्य-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य बातें दी गई हैं। दुर्गाशंकरजी का दूसरा ग्रन्थ 'भोजपुरी कवि और काव्य' बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् से प्रकाशित हो रहा है। इसमें भोजपुरी के अनेक लुप्तप्रायः कवियों की कविताओं को खोजकर प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशित हो जाने पर भोजपुरी साहित्य के अनेक विस्तृत कवि-रत्न प्रकाश में आ जायँगे तथा इस साहित्य की अनेक टूटी हुई कड़ियाँ जोड़ी जा सकती हैं।

डब्ल्यू० जी० आर्चर आई० सी० एस०, जो बिहार में पटना डिवीज़न के कमिश्नर थे—तथा श्री संकटाप्रसाद ने 'भोजपुरी ग्राम्य-गीत' के नाम से भोजपुरी गीतों का संकलन किया है।[2] इस पुस्तक में संग्रहीत गीतों की कुल संख्या ३७७ है। ये गीत बिहार राज्य (प्रान्त) के शाहाबाद जिले के कायस्थ-परिवार से संग्रह किये गए हैं। इन गीतों का संग्रह-काल १६३६–४१ ई० है। इस संग्रह में केवल मूल गीत संकलित हैं। यदि इन गीतों का सन्दर्भ तथा अर्थ भी दे दिया गया होता, तो पुस्तक की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती। श्री आर्चर ने छोटा नागपुर में निवास करने वाली उराँव जाति के लोक-गीतों का भी संग्रह किया है, जो 'लील खोरआ खे खेल' नाम से प्रकाशित हुआ है।

बिहार राज्य के चम्पारन जिले के निवासी पं० गणेश चौबे ने भोजपुरी लोक-गीतों और लोक-कथाओं का प्रचुर संग्रह किया है। यह एकान्तसेवी विद्वान् चिर-काल से भोजपुरी लोक-साहित्य की सेवा में

१. **हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं० २००१) से प्रकाशित।**
२. **बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना (१६४३) द्वारा प्रकाशित।**

एकान्त-भावना से निरत हैं। आपने अनेक लेख लिखकर लोक-गीतों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। इधर 'जनपद' में आपके कई लेख प्रकाशित हुए हैं। आपने कई सौ भोजपुरी लोक-गीतों का साङ्गोपाङ्ग सम्पादन भी किया है। परन्तु अभी तक आपका संकलन साधन के अभाव में प्रकाशित नहीं हो सका है। आशा है चौबेजी अपने लोक-गीतों और कथाओं के संग्रह को शीघ्र ही प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे।

'आजकल' के भूतपूर्व सम्पादक तथा लोक-गीतों के उत्साही संग्रहकर्ता श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने यद्यपि भोजपुरी लोक-गीतों का कोई संग्रह तो प्रकाशित नहीं किया है, परन्तु उनके लोक-गीत-सम्बन्धी कई ग्रन्थों में भोजपुरी के अनेक गीत पाए जाते हैं। 'धरती गाती है' तथा 'बेला फूले आधी रात' सत्यार्थी जी के ऐसे ही संग्रह हैं[1], जिनमें भोजपुरी के फुटकर गीत यत्र-तत्र पाए जाते हैं।

बम्बई की कम्युनिस्ट पार्टी ने 'धरती के गीत' के नाम से लोक-गीतों का एक छोटा-सा संग्रह प्रकाशित किया है। यह हिन्दी की विभिन्न बोलियों में रचे गए गीतों का संग्रह है। खड़ी बोली, अवधी और ब्रज-भाषा के गीतों के अतिरिक्त इसमें भोजपुरी के भी कुछ गीत हैं।

अब तक भोजपुरी लोक-गीतों के जो संग्रह हुए हैं, उनका यही संक्षिप्त विवरण है। लोक-गीतों के प्रेमियों ने सम्भव है कुछ गीतों का संग्रह किया हो, परन्तु उनके संकलन अभी प्रकाश में नहीं आए हैं। इधर 'भोजपुरी' नामक पत्रिका में लोक-गीत-सम्बन्धी कई लेख प्रकाशित हुए हैं, जिनमें गीतों का थोड़ा संग्रह भी है। परन्तु कुछ फुटकर लोक-गीतों के अतिरिक्त इन गीतों का कोई विस्तृत संग्रह इस पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुआ है।

---

१. राजकमल पब्लिकेशन्स तथा राजहंस प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

आधुनिक साहित्य

भोजपुरी के आधुनिक साहित्य से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है, जिसका निर्माण वर्तमान कवि और लेखक कर रहे हैं। इस साहित्य को पद्य, गद्य तथा नाटक इन तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

इनमें पद्य का ही अंश अधिक है। भोजपुरी के नवयुवक कवियों ने पद्य के क्षेत्र में एक नई दिशा में काव्य-रचना प्रारम्भ की है। यह दिशा है ग्रामीण दृश्यों तथा प्रकृति का वर्णन, इन लोगों ने नये छन्दों में नये भावों को भरने का प्रयत्न किया है।

भोजपुरी का गद्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। अभी इसका विशेष विकास नहीं हुआ है। 'भोजपुरी' पत्रिका के प्रकाशन से अनेक लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित होने लगी हैं, जिससे भोजपुरी गद्य की उन्नति हो रही है। अभी भोजपुरी में कुछ कहानियों और जीवन-चरितों को छोड़कर विशेष वस्तु प्रकाश में नहीं आई है। भोजपुरी लोक-कथाओं का भण्डार अवश्य विशाल है, परन्तु अभी तक वे प्रकाशित नहीं हुई हैं। भोजपुरी नाटकों में भिखारी ठाकुर का 'विदेशिया' नाटक और राहुलजी के द्वारा लिखे गए 'नाटक-चक्र' उल्लेखनीय हैं। सम्भवतः

भोजपुरी में कोई मौलिक उपन्यास अभी नहीं लिखा गया है । श्री रघुवंश-नारायणसिंह ने श्री वाएड़ावासिल वेस्का के उपन्यास का 'व्रोरो' नाम से अनुवाद किया है ।

(क) पद्य

बिसराम—भोजपुरी के कवियों में बिसराम का स्थान महत्त्वपूर्ण है । अपढ़ होने पर भी इस भोजपुरी जन-कवि ने ऐसे सरस तथा भाव-पूर्ण पद्यों की रचना की है, जो किसी भी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु हो सकती है । बिसराम का जन्म उत्तरप्रदेश के आज़मगढ़ जिले के सिरामपुर नामक गाँव में हुआ था । यह गाँव टोन्स नदी के किनारे बसा हुआ है, जिसका प्राचीन नाम 'तमसा' था । बिसराम का मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता था । युवावस्था में इसका विवाह हुआ, परन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् इसकी प्रियतमा का देहान्त हो गया । अपनी प्राण-प्रिया के अकाल काल-कवलित होने के कारण इसके भावुक हृदय को बड़ी चोट पहुँची और इसका आन्तरिक शोक श्लोक (बिरहा) के रूप में प्रकट होने लगा—शोकः श्लोकत्वमागतः ।

बिसराम ने अपनी विरह-वेदना को बिरहों के माध्यम से व्यक्त किया है । अपनी प्राण-प्रिया का शव श्मसान को जाते देखकर इस लोक-कवि के हृदय में जो मनोव्यथा हुई थी उसका वर्णन इन पंक्तियों में कितना सुन्दर हुआ है :

"आजु मोरे घरनी निकलती मोरे घर से,
मोरा फाटि गइले आल्हर करेज ।
'राम नाम सत है' सुनि हम गइली बउराई ।
कवन रछसवा गइले रानी के हो खाई ।।
सुखि गइले आँसू नाँही खुलेले जबनियाँ ।
कहसे के निकारो में त दुःखिया बचनिया ।"

बिसराम को अपनी प्रिया की सुधि सदा आती रहती है । श्मसान

में पड़ी एक खोपड़ी को देखकर वह पूछ बैठता है कि :

"बिना अँखिया के तू त हऊ मोरी रानी,
जोहवू कइसे के बिछुड़लवा के बाट।"

पपीहे को 'पी-पी' करता हुआ सुनकर यह कवि उसे समझाते हुए कहता है कि ए पपीहा ! अब 'पी' के मिलने की आशा छोड़ो ! वियोगी का जीवन विरह की आग में जलने के लिए ही होता है। विरह के बाद मिलने की आशा कहाँ ?

"रोअल धोअल अब छोड़ हो पपीहा,
तनि सुनि मोरिउ लेव बात।
विरहिन के सुख नाहीं मिलत मोर भइया,
उनके जरत वितेले दिन-रात"

इन सीधी-सादी पंक्तियों में कितना बड़ा शाश्वतिक सत्य भरा पड़ा है।

अन्त में यह कवि अपनी प्रियतमा से—जीवित न सही मरकर ही सही—मिलने की आशा से प्रेरित होकर अपनी प्यारी नदी टोन्स (तमसा) से याचना करता है कि ऐ माता ! मरने के बाद मेरी हड्डियों को तुम वहीं बहाकर ले जाना जहाँ मेरी प्राण-प्यारी प्रियतमा की हड्डियों की राख पड़ी हो :

"मोरी हड़ियन के माता उहवा ले जइह,
जहाँ उनकी हड़ियन के रहे चूर।"

बिसराम के केवल बीस-तीस बिरहों का ही अब तक पता चल सका है। परन्तु इन बिरहों को पढ़ने से उनकी सरलता का पता चल सकता है। बिसराम ने सच्चा भावुक कवि-हृदय पाया था। यही कारण है कि उसकी कविता में इतनी मनोहरता तथा मर्मस्पर्शिता है।

बाबू रामकृष्ण वर्मा—काशी-निवासी बाबू रामकृष्ण वर्मा बड़े ही साहित्यिक जीव थे। सरलता तथा मधुरता इनके जीवन में कूट-कूट-कर भरी थी। इन्होंने 'बिरहा नायिका-भेद' नामक एक पुस्तिका लिखी

है, जो अल्पकाल होने पर भी साहित्यिक दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इस पुस्तिका में विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का भेद लिखकर उनका उदाहरण भोजपुरी भाषा में बिरहा छन्द में दिया गया है।

वर्माजी कविता में अपना नाम 'बलबीर' रखा करते थे। इनकी भाषा बड़ी सरस तथा सरल है। कहीं-कहीं संस्कृत की पदावली का भी इन्होंने प्रयोग किया है। इस कारण भाषा में विशेष मधुरता आ गई है। मध्या नायिका का यह वर्णन कितना सुन्दर तथा सटीक है :

"लजिया के बतिया में कइसे कहो ए भइजी
जो मोरे बूते कहलो ना जाय।
पर के फगुनवां की सियली चोलियवा में
असो ना जोबनवा अमाय॥"

प्रवत्स्यत्पतिका का यह चित्रण कितना मार्मिक है :

"दुःखवा के बतिया नगीचवो ना आवे
गुइयां हँसी खुसी रहेला हमेस।
बजुआ सरकि कर-कँगना भइल,
सुनि प्यारे क गवनवा बिदेस।"

खण्डिता नायिका का वर्णन वर्माजी ने बड़ी ही मार्मिक शैली में किया है। सचमुच यह निम्नांकित बिरहा बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है :

"ओठवा के छोरवा कजरवा, कपोलवा
पै पिकवा के परली लकीर।
तोरी करनी समुझ के करेजवा फाटत
दरपनवा निहारो 'बलबीर'।"

साहित्यिक बिरहों की चाशनी चखने के लिए रसिकों को 'बिरहा-नायिका भेद' अवश्य पढ़ना चाहिए।

तेगअली—ये बनारस के रहने वाले मुसलमान थे। इनकी एक-मात्र रचना 'बदमाश-दर्पण' है, जिसमें बनारसी बोली की झाँकी देखने को मिलती है। ये बड़े ही मस्त जीव थे। काशी के कजली और कव्वाली

गाने वाले गवैयों के आप सरदार थे। आपके 'बदमाश-दर्पण' की भाषा बड़ी सजीव, मुहावरेदार और चलती हुई है, जिसमें काशी के लोगों की बोल-चाल का बड़ा ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। आँखों में सुरमा लगाने की वजह की यह सफाई सुनिये :

"हम उनसे पूछली आखों में सुरमा काहे बदे लगाइला।
उ हँस के कहलन छूरी पत्थर से चटाइला।।"

तेगअली की भाषा बड़ी चलती हुई तथा हृदय पर चोट करने वाली है। इनकी चहकती तथा फड़कती हुई भाषा के एक-दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे :

"हम खर-मिटाव कइली हा रहिला चबाइ के।
भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे।।
जानीला आजकल में भनाभन चली रजा।
लाठी, लोहांगी, खंजर और बिछुआ तोरे बदे।।
कासी, पराग, द्वारिका, मथुरा औ वृन्दावन।
धावल करेले 'तेग' कन्हैया तोरे बदे।।"

दूधनाथ उपाध्याय—पं० दूधनाथ उपाध्याय का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के दयाछपरा नामक गाँव में हुआ था। ये बहुत दिनों तक बैटिया (बलिया) मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक रहे। इस पद पर रहते हुए आपने बड़ी कीर्ति प्राप्त की। परन्तु आपकी कीर्ति को अमर करने वाली आपकी भोजपुरी कविता है।

उपाध्यायजी ने बहुत पहले से ही भोजपुरी में कविता लिखनी प्रारम्भ की थी। सन् १६१६ ई० में प्रथम महायुद्ध के अवसर पर इन्होंने 'भर्ती के गीत' नामक पुस्तिका की रचना की थी; जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और अहीरों को लड़ाई में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित किया गया था। इन जातियों को रण में जाकर अंग्रेजों की ओर से लड़ने के लिए ललकारता हुआ कवि कहता है कि :

"हमनी का सब केहू ब्राह्मन, छतिरि होके,
रन में चलबि नाहि तनिको डेराइबि ।
अबले चुकली बड़ बाउर कइलिहाँ जा,
अब पुरुखनि के ना नइयाँ हँसाइबि ।।
जरमन दुहुट के नहट कइलां बिना,
अब ना मानबि बलु मरि मिटि जाइबि,
सगरे मुलुक ललकारि के चलबि अब,
'दूधनाथ' रन से ना पयर हटाइबि ।।"

उस समय देश में अंग्रेजों का प्रभुत्व था। सभी लोग अंग्रेजी सत्ता की विजय के अभिलाषी थे। अतएव यह कवि पंचम जार्ज की विजय की प्रार्थना भगवान् से करता हुआ कहता है कि :

"सिरि भगवान् राजा रामजी चरन परि
हाथ जोरि-जोरि सब केहू कहतानि जा।
हमनी के बुधि दिही बल बउसाव दिही,
लड़े के सकति दिही वर माँगतानी जा।
जरमन दुहुट के नहट कराइ दिहीं,
पंचम जारज जीके जीति चाहता नी जा।
'दूधनाथ' अपना चरन में परेम दिही,
किरिया बनला रहे हाथ जोरत बानी जा।"

उपाध्यायजी की दूसरी रचना 'भूकम्प-पचीसी' है, जिसमें १५ जनवरी १६३४ ई० के प्रलयंकारी भूकम्प का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। इनकी तीसरी पुस्तक 'गो-विलाप-छन्दावली' है, जिसमें गोरक्षा के महत्त्व का विशद वर्णन है। उपाध्यायजी ने सामाजिक कविताएँ भी बहुत सी लिखी हैं। आप अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे। अतः प्रायः सभी सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं का उल्लेख आपने अपनी कविता में किया है। सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला एक बार केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव के लिए खड़े हुए थे। उस समय उपाध्यायजी ने जो कविता

बनाई थी उसकी एक कड़ी थी :

'बिड़ला बहादुर के ओट देत बानी जा'।

अभी कुछ ही दिन हुए जब आपका देहावसान हो गया।

बाबू अम्बिकाप्रसाद—आप बिहार राज्य (प्रान्त) के निवासी थे और आरा में बहुत दिनों तक मुख्तारी करते थे। आपने शान्त-रस सम्बन्धी बहुत-से भोजपुरी गीतों की रचना की है, जिनमें रहस्यवाद की भी झलक देखने को मिलती है। इनकी निम्नांकित कविता में रहस्यवाद की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है :

"देखली में सखिया एक कल के खेलवना रे,
पांच पचीस कलवा लागल रे की।
तीन सौ साठि तामें लगली लकड़िया रामा,
नव सौ जोड़वा बान्धल रे की।
दुई रे सहेलिया मिलि खेलेली खेलनवा रामा,
तीनों रे खेलकवा तेहि सँगवा धवेला रे की।
नव रे महीनवा में बनेला खेलनवा रामा,
खेलवा मेटत देर ना लागेला रे की।
'अम्बिका' कहत बाड़े समुझि खेलु गोरिया रामा
खेलवा के भेदवा गुरु से पावेला रे की।"

पं० महेन्द्र मिश्र—ये बिहार राज्य के छपरा जिले के मिश्रबलिया गाँव के निवासी थे। अभी हाल ही में इनका देहावसान हुआ है। ये एक विशेष प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। अधिक शिक्षा न प्राप्त होने पर भी इनमें काव्य-रचना की दैवी शक्ति थी। इन्होंने हजारों गीतों की रचना की है, जो 'पूर्वी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपकी कविताओं, गीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'महेन्द्र मंगल' अधिक प्रसिद्ध है। यद्यपि आपने जीवन में बहुत धन पैदा किया, परन्तु आपकी कीर्ति इन्हीं गीतों के कारण अजर-अमर रहेगी। आपने अपने गीतों में सर्वत्र अपने नाम की छाप लगा दी है, जिससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है

टिकुली में साटि रामा, बइठली अटरिया,
से चमके लगले ना, मोर बेंदुली टिकुलिया।
से चमके लगले ना।"

महेन्द्र मिश्र के ये पूर्वी गीत रेकार्ड में भी आ गए हैं और बड़े शौक से लोगों द्वारा सुने जाते हैं। नाटक के क्षेत्र में जो प्रसिद्धि भिखारी ठाकुर को प्राप्त है, गीतों के क्षेत्र में वही ख्याति पं० महेन्द्र मिश्र को भी उपलब्ध है।

श्री रघुवीर शरण—श्री रघुवीर शरण जी 'बटोहिया' नामक गीत के अमर रचयिता हैं। भोजपुरी प्रदेश में इस गीत का इतना अधिक प्रचार है कि बच्चे भी इसे गाते दिखाई पड़ते हैं। यदि 'बटोहिया' को इस प्रदेश का राष्ट्रीय गीत कहें, तो इसमें अत्युक्ति न होगी। खेतों में काम करने वाले किसानों, स्कूल जाते हुए छात्रों तथा गाय चराने वाले अपढ़ चरवाहों के मुँह से भी यह गीत सुनने को मिलता है। इस गीत में अखण्ड भारत का जो चित्र खींचा गया है, वह बड़ा ही सजीव और सुन्दर है। भारत माता का यह दिव्य स्वरूप कितना मनोरम है:

"सुन्दर सुभूमि भइया भारत के देसवा से,
मोरे प्रान बसे हिम खोह रे बटोहिया।
एक द्वार घेरे रामा हिम कोतबलवा से,
तीन द्वार सिन्धु घहरावे रे बटोहिया॥"

अखण्ड भारत का सुन्दर चित्रण करता हुआ मधुर राग में कवि गाता है:

"गंगा रे जमुनवा के झगमग पनिया से,
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया।
ब्रह्मपुत्र, पंचनद घहरत निसि दिन,
सोनभद्र मीठे स्वर गावे रे बटोहिया॥"

भारत की सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करते हुए रघुवीर शरण जी कहते हैं:

"नानक, कबीरदास, शंकर, श्रीराम, कृष्ण,
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया।
विद्यापति, कालिदास, सूर, जयदेव कवि,
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया।"

इस गीत में राष्ट्रीय भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। इस समय तो इसका और भी अधिक महत्त्व है। इस गीत से अनेक कवियों ने प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त किया है। श्री मनोरञ्जनप्रसाद सिनहा की 'फ़िरंगिया' नामक सुप्रसिद्ध कविता इसी 'बटोहिया' की तर्ज पर लिखी गई है। कभी एक समय था, जब 'बटोहिया' का गीत घर-घर और गली-गली में सुनाई पड़ता था, परन्तु आजकल भिखारी ठाकुर की 'विदेसिया' के आगे इसका रंग कुछ फीका पड़ गया है। फिर भी इसकी लोकप्रियता बनी हुई है।

मनोरंजनप्रसाद सिनहा—भोजपुरी के वर्तमान (जीवित) कवियों में मनोरंजनप्रसाद सिनहा का एक विशेष स्थान है। असहयोग आन्दोलन के दिनों में आपकी 'फ़िरंगिया' नामक कविता बड़ी लोकप्रिय थी। भोजपुरी प्रदेश में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने में इस कविता का बड़ा हाथ था।

मनोरंजनप्रसाद जी का जन्म बिहार-राज्य के शाहाबाद जिले के डुमराँव नामक स्थान में हुआ था। आप बहुत दिनों तक हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में अँग्रेज़ी के अध्यापक थे। आजकल आप राजेन्द्र कालेज, छपरा के प्रिन्सिपल के पद पर प्रतिष्ठित हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में आपका 'फिरंगिया' गीत जातीय जागरण का महामन्त्र था। इस गीत में अंग्रेज़ी राज्य से उत्पन्न भारत की दुर्दशा का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है, जिसकी पहली कड़ी इस प्रकार है :

"सुन्दर सुघर भूमि भारत के रहे रामा,
आजु उहे भइल मसान रे फ़िरंगिया"

कवि की वाक्-वैखरी प्रस्फुटित होती है और वह आततायी ब्रिटिश शासन को सावधान करते हुए कहता है कि :

"चेत जाउ चेत जाउ भइया तें फ़िरंगिया तें,
छोड़ दे अधरम के पन्थ रे फ़िरंगिया।
दुखिया के आह तोर देहिया के भसम क दी,
जरि-भुनि होइ जइबे छार रे फ़िरंगिया।"

परन्तु आज यह राष्ट्रीय कवि मौन है। फिर भी वर्तमान शासन के विरोध में कभी-कभी वह बोल ही उठता है। आजकल मनोरंजन जी की भोजपुरी कविताएँ आरा से प्रकाशित 'भोजपुरी' नामक पत्रिका में प्रकाशित होती रहती हैं। परन्तु उनमें अब वह जोश नहीं है, जो 'फ़िरंगिया' वाली कविता में था। क्रान्ति का यह कवि अब शान्ति का पुजारी हो गया है। वह लिखता है :

"का जाने राम कवन होई गतिया।
बेरी-बेरी सोचीला कि फेरू ना करब अइसे,
तबहूँ करीलें फेरू ओहसने गलतिया।
सोचि-सोचि मनवा में होखेला गलानी,
केकरा से अपना मन के कहीं बतिया।।"

मनोरंजनप्रसाद जी खड़ी बोली हिन्दी में भी अच्छी कविता करते हैं। इनकी खड़ी बोली की कुछ कविताएँ 'मुनमुन' नामक संग्रह में मिल सकती हैं।

रामविचार पाण्डेय—उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के कवि डॉ० रामविचार पाण्डेय का भोजपुरी कवियों में एक विशेष स्थान है। आपने भोजपुरी भाषा में देहाती जीवन को चित्रित करने में कमाल हासिल किया है। आपकी कविताओं का संग्रह 'बिनिया बिछिया' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

आजकल आप भोजपुरी प्रदेश के वीर नेता बाबू कुँअरसिंह पर एक नाटक लिख रहे हैं। पाण्डेयजी ने भोजपुरी के ठेठ शब्दों का

प्रयोग करते हुए भाषा में विशेष माधुर्य लाने का सफल प्रयास किया है। इनकी 'अंजोरिया' नामक कविता बड़ी प्रसिद्ध है, जिसमें भावों की सरसता के साथ ही शब्दों की कोमलता देखते ही बनती है :

"टिसुना जागलि सिरि किसुना के देखे कै त,
आधि रतिये खा उठि चलली गुजरिया।
चान का नियर मुँह चमकेला रधिका के,
चम-चम चमकेले जरी के चुनरिया।
चकमक चकमक लहरि उठावे ओ मे,
मधुरे मधुरे डोले कान के मुनरिया।
गोखुला के लोग इत देखि के चोहइले कि,
राति में अमावसा के उगलो अँजोरिया।।"

कृष्ण से मिलने के लिए राधा जी अन्धेरी रात में ही उनके पास चली जाती हैं। कृष्ण उन्हें आया देखकर आश्चर्यित होते हैं और उनसे पूछते हैं, तुम इस समय कैसे चली आई? इस पर राधा उत्तर देती हुई कहती है कि :

"हमके बोलावेलू तू अइलू हा कइसे हो,
बड़ी भाकासावनि भइलि बा अन्हरिया।
कसबा के राकस घूमत बड़वार बाड़े,
गोखुला में कबे कबे होत बाड़े चोरिया।
सभा के ठगेल कृष्ण ! हमके भोराव जानि,
हाथ हम जोड़ी ले करीले गोड़ धरिया।
हृदया में जेकरा त तूँ ही बइसल बाड़,
ओकारा खातिर ई अन्हरि अँजोरिया।"

प्रसिद्धनारायणसिंह—आप बलिया जिले के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता हैं। पहले आप मुख्तारी करते थे, परन्तु राष्ट्र की पुकार पर इस काय को छोड़ दिया। आप राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बन्ध में कारा की यातना भी भुगत चुके हैं। आपने 'बलिया जिले के कवि और लेखक'

नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें इस जिले के कवियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

लेखक के अतिरिक्त आप एक कवि भी हैं। आपकी कविता में भाव और भाषा का अच्छा सामञ्जस्य पाया जाता है। पं० जवाहरलाल नेहरू सन् १९४५ ई० में जब बलिया गये थे, उस समय आपने 'जवाहर-स्वागत' नामक कविता लिखी थी, जिसके प्रत्येक पद से ओज टपका पड़ता है। बलिया निवासियों की वीरता का परिचय देते हुए यह कवि कहता है कि :

'निरबल, निरधन, निरगुन, गँवार,
अलगा आपन बोली विचार।
कन-कन में जेकरा क्रान्ति बीज,
अइसन भोजपुरी टप्पा हमार।
इतिहास कहत पन्ना पसार।'

सन् १९४२ में अंग्रेज़ों द्वारा बलिया में किये गए अत्याचारों का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है :

"गाँवन पर दगलन गन मशीन,
बेंतन सन मरलन बीन बीन।
बैठाई डाल पर नीचे से,
जालिम भोंकलन खच खच सँगीन॥
बहि चलल खून के तेज धार।
घर घर से निकलल त्राहि-त्राहि,
कोना कोना से आहि आहि।
गाँवन गाँवन में लूट फूँक,
मारल, काटल, भागल पराहि॥
फिर गवन सुने केकर गुहार।"

ऊपर की पंक्तियों में अंग्रेज़ों के अत्याचार का कितना सजीव चित्रण किया गया है।

श्यामबिहारी तिवारी 'देहाती'—आप बिहार राज्य के बेतिया जिले के रहने वाले हैं और भोजपुरी में सरस तथा सुन्दर कविताएँ लिखते हैं। आपकी कविताओं का संग्रह 'देहाती दुलकी' (भाग १, २, ३) के नाम से प्रकाशित हो चुका है। कविता में आपका उपनाम 'देहाती' है और आप इसी नाम से अब प्रसिद्ध हैं। 'देहाती दुलकी' भाग १ में आपकी चुनी हुई चौदह कविताओं का संग्रह है, जिनमें ग्रामीण विषयों को लेकर कविता की गई है। 'उठल मास मधु आइल' शीर्षक आपकी कविता में वसन्त-ऋतु में प्रकृति के परिवर्तन का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है।

'देहाती' जी की कविता शृङ्गार-रस-प्रधान है, जिसमें सम्भोग तथा विप्रलम्भ-शृङ्गार—दोनों ही का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है। वियोग-शृङ्गार का यह चित्रण कितना सरस हुआ है :

"कइसे मानी उनुकर बतिया,
मुखले सूखल बीतल रतिया।
कहाँ जुड़ाइब आपन छतिया,
कतवा तुरले जाय।
भँवरा रसवा चुस ले जाय।"

'**सुखले सूखल बीतल रतिया**' इस पंक्ति में कितनी मार्मिक वेदना भरी पड़ी है।

बढ़ती हुई विरह-वेदना का यह चित्रण कितना स्वाभाविक और सरस बन पड़ा है :

"अब ही लें हम काँपतानी,
पलकन पानी ढाँपतानी।
आग लगा कै तापतानी,
तेलवा उल ले जाय।
भँवरा रसवा चुस ले जाय॥"

शृङ्गार-रस के वर्णन के अतिरिक्त 'देहाती'जी ने ग्रामीण जीवन

का भी बड़ा सजीव चित्रण किया है। जाड़े के दिनों में गरीबों को कितना कष्ट होता है, इसका सजीव वर्णन इन पंक्तियों में पढ़िए :

"गरमी त भरसक कटि जाला,
जाड़ हमनिए पर बउराला।
देह उघारे सिसकत पाला,
कवन कहीं हम बात भइया।
सूख गइल बरसात भइया।

'देहाती'जी की कविता में हास्य-रस का पुट भी कुछ कम नहीं है। सावन के मन-भावन महीने में अपनी प्यारी प्रियतमा को भला ससुराल में कौन छोड़ सकता है ? इस सम्बन्ध में आपकी हास्य-रस-मिश्रित यह कविता सुनिए :

"सावन मास बहे पुरुआ,
जानि केहू के घूटे मिलावल जोड़ी।
का कहीं दोसर के बा इहाँ,
अब जे इ सुतार में बाँगर मोड़ी।
आइब आजु जरूर मुनेसर,
भाई के मांग के होंछल घोड़ी।
बोच हईं हमहूँ त पुरान उ,
के ससुरारि में मेहर छोड़ी।"

आपकी 'का का देखनी' शीर्षक एक दूसरी कविता है, जो हास्य-रस से पूर्ण है। इस कविता की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"आगे टेबुल आइल बूझनी नूधके पढ़वि।
आहि बाल ! ई का !! छूरी अवरू काँटा देखनी ॥"

इस प्रकार 'देहाती'जी की कविता में शृङ्गार और हास्य का बड़ा मधुर मिलन हुआ है।

कविवर 'चंचरीक'—चंचरीकजी गोरखपुर जिले के निवासी हैं। आप बड़े ही मस्त जीव और स्वच्छन्द प्रकृति के व्यक्ति हैं। आपकी

रचना 'ग्राम-गीताञ्जलि' है, जो गोरखपुर से प्रकाशित हुई है। भोजपुरी समाज में विवाह के अवसर पर गाली गाने की प्रथा है। 'चंचरीकजी' ने इस बुराई को दूर करने के लिए इन अवसरों के उपयुक्त राष्ट्रीय गीत बनाए हैं। इस प्रकार आपने नये लोक-गीतों को लिखकर जनता में राष्ट्रीय भावना के प्रचार का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। भोजपुरी के प्राचीन छन्दों में नया भाव भरने का आपका प्रयास सर्वथा स्तुत्य है। ग्रामीण छन्द में लिखी गई राष्ट्रीय भावनाओं से भरी यह कविता पढ़िये :

'झुर झुर बहति बयरिया न नदिया हो,
फर-फर डोले मोर चरखवा हो जी।
सुनु-सुनु हमरो बचनिया भउजिया हो,
हमहू सखवा कतबै चरखवा हो जी॥"

पं० मोतीलाल नेहरू की मृत्यु पर यह कवि कहता है कि :

"भारत के नइया के डारि मझधारवा में,
असमय चलि गइले मोतीलाल नेहरू।
कइसे के पार होइ है देसवा के नइया रे,
पतवार रहलै रे मोतीलाल नेहरू॥"

'चंचरीक'जी ने सोहर तथा जाँत के गीत भी लिखे हैं जिनमें राष्ट्रीय विचार-धारा का प्रवाह देखते ही बनता है। इस कवि ने एक नवीन दिशा में नया प्रयास किया है परन्तु इन्हें इस कार्य में विशेष सफलता नहीं मिल सकी है।

रणधीरलाल श्रीवास्तव—आपका जन्म बलिया जिले के 'सोन-वर्सा' नामक गाँव में हुआ था। आप भोजपुरी के एकान्त-सेवी कवि हैं। प्रचार या प्रोपेगेण्डा से दूर रहते हुए आप भोजपुरी की काव्य-साधना में निरत रहते हैं। आपने भोजपुरी में बरवै छन्द में कविता लिखने में सफलता प्राप्त की है। आजकल आप 'बरवै शतक' नामक काव्य-ग्रन्थ लिखने में लगे हैं। लेखक की यह धारणा है कि अवधी भाषा की भाँति

भोजपुरी भी बरवै छन्द के लिए बड़ी ही उपयुक्त है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रणधीरलालजी की कविता है।

शुक्लाभिसारिका का उनका यह वर्णन कितना सजीव है :

"टहटहि उगलि अँजोरिया, ठहरे ना आँखि।
पहिरि चलेली लुगवा बकुला पाँखि ॥"

पति के वियोग में किसी विरहिणी का हृदय पिघलकर आँसुओं के रूप में निकल रहा है। कवि कहता है :

"विरह अगिनिया छतिया धधके मोर।
गलि गलि बहेला करेजवा अँखियन कोर।"

यह बरवै बिहारी के निम्नांकित दोहे के ऊपर लिखा हुआ जान पड़ता है :

"तच्यौ आंच अति विरह की, रह्यौ प्रेम रस भींज।
नैनन के मग जल बहै, हियो पसीज-पसीज ॥"

गोपियों के साथ कृष्ण की क्रीड़ा का यह वर्णन कितना मधुर तथा मर्मस्पर्शी है :

"होत पराते गहलीं जमुना तीर।
जानि अकेले रोक ले बावन वीर।
माँगेला गोरस आइल कमरी ओढ़।
तापर रार बेसाहेला गगरी फोड़ ॥
काहे छीन-झपटा करेल दहिया चोर।
गोड़वा के धोवन बा, पइब ना मोर ॥"

'अशान्त'—ये अपने इसी उपनाम से प्रसिद्ध हैं। आपकी कविता 'भोजपुरी' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ करती है। इनकी कविता की भाषा प्राञ्जल तथा भाव उच्चकोटि के होते हैं। 'अशान्त' की कविता में जोर भी है और जोश भी। आपकी 'श्मसान' नामक कविता बड़ी भावपूर्ण है। श्मसान को देखकर कवि कहता है कि यह जीवन की अमर कहानी को सुनाता है। धूम्राच्छादित आकाश मानो मुँह फेरकर यह

कह रहा है कि श्मसान शव के व्याज से अपने भाग्य को जला रहा है :

"हहरो जमुनियां के झगमग पनियां,
अमर जिनिगिया के गावेला कहानियां।
कहेला धुंआवल मुंह फेरि आसमानवां,
अपने करमवा जलावेला मसानवा ॥"

श्मसान में कितने वीर पुरुषों की लाशें जलती हैं जिन्होंने संसार में अलौकिक कार्य किये थे। कितनों ने यमराज के आसन को भी अपने पराक्रम से हिला दिया था। परन्तु आज वे भी श्मसान में जलते हुए दिखाई देते हैं :

"जवने जिनिगिया के सॅसरी-पवनवा,
दिहले हिलाई यमराज के आसानवां।
ओहिजा भर ले करवटिया जमानवा,
अमर परानवां जलावेला मसानवां ॥"

अशान्तजी भोजपुरी के नवयुवक कवि हैं। आशा है वे इसी प्रकार अपनी कविता से इसके भण्डार को भरते रहेंगे।

पं० महेन्द्र शास्त्री—शास्त्री जी बिहार राज्य के छपरा जिले के निवासी हैं। आप पुराने साहित्य-सेवी तथा कवि हैं। कुछ दिन पहले आपने पटना से 'भोजपुरी' नामक पत्रिका प्रकाशित की थी परन्तु वह अनेक कारणों से बहुत दिनों तक नहीं चल सकी।

आपकी कविता में स्वाभाविकता की मात्रा अधिक पाई जाती है। इसके साथ ही इसमें हास्य का पुट भी कुछ कम नहीं रहता। आपकी एक कविता का शीर्षक है—'मासन में पूसे बदमास।' इसमें आपने पूस मास में होने वाली कठिनाइयों का बड़े ही सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है। कहीं कौआ जाड़े के मारे ठिठुरा जा रहा है, तो कहीं ठंडक के मारे पानी काटने दौड़ता है। आगे की पंक्तियों में गाँव का दृश्य कितनी सुन्दर रीति से अंकित किया गया है :

"कौआ कुँकुरल गाँव गाँव,
कहवाँ गइल काँव काँव।
दिन उठला तक हूआँ हूआँ,
सगरे जानू घूआँ घूआँ।
नदी पोखरा ताल काल,
एक डुबकिये देह हेवाल।
पानी जानू दउरे काटे,
भीड़ नइखे घाटे घाटे।
गगरा भरल उठाइले,
सिर पर ना भभकाइले।"

आगे कवि कहता है :

"रोगे दूनू जाड़ जड़ैया,
दूनू जानू जउँआँ भइया।
रूई धूँई दुई दवाई,
ना त रोगी मरिये जाई ॥"

रामनाथ पाठक 'प्रणयी'—भोजपुरी के आधुनिक कवियों में पं० रामनाथ पाठक 'प्रणयी' का एक विशेष स्थान है। इनकी कविता में हमें नवीन चेतना का जन्म दिखाई देता है। इन्होंने 'कोइलिया' तथा 'सितार' दो काव्य-ग्रन्थों की रचना की है, जो अभी प्रकाशित हुए हैं। 'प्रणयी' की कविता की विशेषता है देहाती प्रकृति का सजीव चित्रण। इन्होंने ग्रामीण दृश्यों का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह बड़ा ही सरस तथा हृदयस्पर्शी है। देहाती वातावरण को अपनी कविता में उपस्थित करने में इन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। 'अधार' शीर्षक इनकी कविता की कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"धनवाँ प चढ़ल धनि ! सोनवा के पनियाँ।
टबियो प रसे रसे अँहठे जबनियाँ।

ठिठुरल देहिया, डँडेरे प किसनवाँ।
भोरही देखाई देला हुलसल मनवाँ।
देखिके बरेला मन कतहूँ कटनियाँ।
कतहू लोभाला मन देखि खरिहनियाँ।
कहुँ पँजिआवल, बान्हल रे, बोझवा के बहरवाँ।
गह गह रे आजु लागेला बघरवाँ।।"

'प्रणयी'जी ने शरद् का वर्णन करते समय बड़ी सुन्दर पद-शय्या का प्रयोग किया है। यह वर्णन ग्रामीण वातावरण के कितना उपयुक्त है :

"आइल शरद सुहावन सजनी !
आइल शरद सुहावन !
साफ भइल आकाश, कास-कुश कुमुद फुलाइल,
उचटल नींद, रातके सपना होत परात भुलाइल।
चमक रहल झक-झक पानी में चम-चम चान लुभावन,
आइल शरद सुहावन सजनी !
आइल शरद सुहावन।"

(ख) गद्य

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि संसार के सभी साहित्यों में पद्य का जन्म पहले होता है और गद्य का उसके उपरान्त। तमसा के तट पर निवास करने वाले महर्षि की रस-सिद्ध वाणी जब क्रौञ्च-वध को देखकर प्रथम बार स्खलित हुई थी तब उसने पद्य का ही रूप धारण किया था। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य में कविता की सृष्टि पहले होती है और गद्य की बाद में। संस्कृत तथा हिन्दी का विस्तृत साहित्य इस विषय का प्रमाण है। भोजपुरी साहित्य के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। भोजपुरी में सन्त-साहित्य का पद्य में निर्माण तो बहुत पहले से हो रहा था, परन्तु इसके गद्य का प्रारम्भ बहुत बाद में हुआ।

भोजपुरी में कोई प्राचीन गद्य-ग्रन्थ नहीं उपलब्ध होता और न कोई साधन ही मिलता है जिससे उसके प्राचीन रूप का ज्ञान प्राप्त हो सके। हाँ कुछ कागज़-पत्रों में अवश्य भोजपुरी-गद्य की झाँकी हमें देखने को मिलती है, परन्तु ये बहुत प्राचीन नहीं हैं। आजकल जो भोजपुरी-गद्य उपलब्ध होता है उसे प्रधानतया तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) लोक-कथाओं में प्राप्त गद्य।

(२) प्राचीन कागज़-पत्रों में सुरक्षित गद्य।

(३) आधुनिक पुस्तकों में प्रयुक्त गद्य।

भोजपुरी लोक-कथा-सम्बन्धी अभी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। इन पंक्तियों के लेखक ने सैकड़ों लोक-कथाओं का संग्रह किया है, जिनके अध्ययन से भोजपुरी गद्य का स्वरूप जाना जाता है। इन कथाओं की भाषा-शैली बड़ी सुन्दर तथा सरस है तथा पाठकों को ये बलात् आकर्षित कर लेती हैं। इनकी भाषा चलती तथा मुहावरेदार है। सरलता इनमें कूट-कूटकर भरी हुई है। इससे सर्वसाधारण जनता भी इन्हें आसानी से समझ सकती है। इन बातों को स्पष्ट करने के लिए लोक-कथाओं में प्राप्त गद्य के केवल एक-दो ही उदाहरण पर्याप्त होंगे :

"हमार लाल अभी साझि के विहान ना भइल, अभी तोहार पियरी मइल ना भइल अवरू तू जाये के कहत बाड़। × × × लछटकही ओकर जाति ना लिहलसि उ राति दिन हाड़ तूरि के घर के काम करे।"

"रानी इ सोचि के मन मारि के उदास बइठलि रहली। तब संकर सुग्गा रानी से पूछलसि कि ए रानी! आजु का गत ह कि तू उदास बइठल बाडू। रानी आपन सब दुःख कहि सुनवली। सुग्गा कहलसि कि ए रानी! कह त हम उड़त-उड़त राजा के पास जाइ के ताहार दुःख कहि सुनाईं। रानी कहली कि ए हमार कर सुग्गा! भलाई अवरू पूछि-पूछि।"[1]

१. लेखक का निजी संग्रह।

भोजपुरी गद्य-सम्बन्धी कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति आज उपलब्ध नहीं है। अतः इसके प्राचीन रूप के दर्शन राजघरानों, रईसों, ज़मींदारों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के यहाँ सुरक्षित कागज-पत्रों में ही हमें होते हैं। भोजपुरी प्रदेश में जो सुलहनामे, दस्तावेज तथा बीजक लिखे जाते थे—वे प्रायः भोजपुरी गद्य में ही लिपिबद्ध किये जाते थे, परन्तु इन कागज़-पत्रों का संग्रह प्रकाशित रूप में अभी देखने को नहीं मिला है। ये कागज-पत्र आज भी राजाओं, रजवाड़ों तथा जमींदारों के घरों में वेटनों में बँधे पड़े हुए हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डि० लिट्० तथा श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह के उद्योग से इनमें से दो-चार कागज़-पत्रों का प्रकाशन भी हुआ है। भोजपुरी गद्य के प्राचीन रूप को जानने के लिए ये दान-पत्र बहुत ही उपयोगी हैं।

नीचे एक दान-पत्र की प्रतिलिपि दी जाती है जो आज से २७० वर्ष पूर्व का है। इसका काल सम्वत् १७३५ विक्रमी है। इसमें महाराज कुमार बाबू कनकसिंह देव द्वारा श्री बुधी राम पाण्डे को दान स्वरूप कई गाँवों को देने का उल्लेख है :

"गंगा जी के तीर वशिन प्रीति शोश्ती श्री चक्र नारायणत्यादि विविध विरुदावली विराजमान मानोन्त श्री महाराज कुमार बाबु कनक शीङ्घदेवानां शदा समर विजेना पित्रिदत्त श्री बुधीराम पाण्डे के *दिहल* **मौजे चतर शीवार कै** *दिहल* **धापमारो नाम बुधीरामपुर शलल शकठ शयथचतुर शीवा अवछिन के** *दिहल* **शकलपश्री.............कुशहस्त** *दिहल* **शवत १७३५ शकै फाल्गुन वदी १ बार शुभवासरेमोजम मैरवा ....दशखत हरीनन्दन दाश।"**

यह दान-पत्र अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसकी भाषा पर विचार करने से यह स्पष्ट ही पता चलता है कि यह संस्कृत-मिश्रित है। साथ ही इसमें समस्त पदावली का प्रचुर प्रयोग किया गया है। 'विविध-विरुदावली विराजमान मानोन्त' इस पदावली से हमारे कथन की पुष्टि पूर्णतया होती है। भोजपुरी 'दिहल' (दिया) क्रिया-पद का इस दान-

पत्र में, भिन्न-भिन्न स्थानों में चार बार प्रयोग किया गया है। मुगलों के समय में तथा अंग्रेज़ी राज्य-काल में कचहरी की भाषा फारसी और उर्दू होने पर भी इस दान-पत्र की भाषा संस्कृत-मिश्रित भोजपुरी है। इस दान-पत्र में 'स' को 'श' लिखने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इसीलिए 'स्वस्ति' शब्द 'शोश्ती' तथा 'सदा समर विजयिनां को' 'शदा शमर बिजैना' लिखा गया है। इसी प्रकार 'कुशहस्त' को 'कुशहश्त' रूप प्रदान किया गया है।

आधुनिक भोजपुरी गद्य का स्वरूप हमें वर्तमान लेखकों की कहानियों तथा नाटकों में उपलब्ध होता है। 'भोजपुरी' पत्रिका में आजकल जो लेख प्रकाशित हो रहे हैं उनमें भी इसके स्वरूप के दर्शन हमें होते हैं। इस भाषा के गद्य का विकास धीरे-धीरे हो रहा है। आशा है कि शीघ्र ही पद्य की ही भाँति इसका गद्य भी प्रौढ़ता को प्राप्त कर लेगा।

कहानी

श्री अवध विहारी 'सुमन' ने 'जेहल क सनदि' नामक कहानियों की एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। सम्भवतः यह आधुनिक कहानियों की सर्वप्रथम पुस्तक है। इस में 'सुमन' जी के द्वारा लिखित दस कहानियाँ संग्रहीत हैं। डा० उदय नारायण तिवारी ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि "**भोजपुरी जनता की ठसक, रोबदाब, रागद्वेष आदि को यह पहली बार अपनी वाणी का उचित परिधान मिला है।**" वास्तव में इन कहानियों में भोजपुरी समाज के विभिन्न अंगों का चित्रण बड़ी सुन्दरता से किया गया है। 'मलिकार'-शीर्षक कहानी में तिलक की दूषित प्रथा का उल्लेख किया गया है। 'आतमघात' नामक कहानी में दुनिया के झंझटों से परेशान होकर बलराम नामक युवक आत्महत्या कर लेता है। आजकल साधु और महात्मा का वेश बनाकर घूमने वाले तथा-कथित सन्त कितने दुराचारी तथा भ्रष्ट हो गए हैं इसका चित्र 'मवनी बाबा' नामक कहानी में हमें देखने को मिलता है। इसी प्रकार 'कत-

वारू दादा' में वृद्ध विवाह का नग्न चित्र उपस्थित किया गया है।

'सुमन' जी की कहानियों की भाषा बड़ी सीधी और सरल है, जिन्हें पढ़कर उनके भाव को समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। आपके वर्णन द्वारा देहाती दुनिया का चित्र आँखों के आगे स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है।'आतमघात' शीर्षक कहानी का यह उद्धरण देखिए :

"जामुना घाट पर फूस का पलानी में बइठल बलिराम आपन दुर-दसा आ दुनियां क हाल देखिके झंखत रहलन। रहि-रहि के उनका मन में उठे कि गरीब भइला से बढ़ि के दूसर कवनो भारी पाप नइखे। × × × बलिराम समाज के एह पाप के फल खुद भोगत रहलन 'आगा नाथ ना पीछे पगहा' वाली दसा भइलि चाहति रहे। चचेरा भाई गरीब जानि के उनके फरका कइ दिइले रहलन। घर में उनकर मँहतारी, मेहरारू आ ऊ तीन बेकति के पूँजी रहे। डेढ़ बिगहा खेत हीसा मिलल। ऊ हो दुइ बरिस का खाहल-पीयल आ पढ़े का खेवा खरचा में रेहन धराई गइल"।

'सुमन' जी की कहानियों में भोजपुरी कहावतों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। आपकी प्रत्येक कहानी में अनेक कहावतें भरी पड़ी हैं जिनसे भाषा बड़ी रोचक हो गई है। यहाँ कुछ ही उदाहरण पर्याप्त होंगे :

"अब्बर पर उनचास बयारि।
विपति के झोंका एक ओर ले ना आवे।
बेल तर के मारल बबूर तर।
अनकर आटा अनकर घीव, साबस साबस बाबाजी।
रोगिया • चाहे तवन बयदा बतावे।"

इनकी भाषा में मुहावरों का प्रयोग भी कुछ कम नहीं हुआ है। इस प्रकार 'सुमन' जी की भाषा सीधी, सादी तथा चलती हुई है।

श्रीमती राधिकादेवी श्रीवास्तव 'विशारद'—भोजपुरी के कहानी लेखकों में श्रीमती राधिकादेवी श्रीवास्तव का नाम अग्रगण्य हैं। इनकी

कहानियों का संग्रह अभी तक पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुआ है। 'भोजपुरी' पत्रिका में इनकी इधर अनेक कहानियाँ छपी हैं, जिनमें 'पोल' 'प्रोफेसर', 'मन्तर' और 'होरी-ह-अ-अ' आदि कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। राधिकादेवी की कहानियों में हास्य तथा व्यंग्य का पुट अधिक पाया जाता है। साथ ही यह हास्य उच्च कोटि का है। आपकी 'पोल' शीर्षक कहानी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है जिसमें जगमोहन नामक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का ढोंग करने वाले किसी व्यक्ति का चन्दा से अनुचित प्रेम दिखलाया गया है। प्रेम में मनुष्य कितना कामान्ध हो जाता है यह बात बड़ी सुन्दर रीति से चित्रित की गई है। जगमोहन जब चन्दा से प्रथम-मिलन के लिए जाता है। उस समय का यह चित्रण कितना सुन्दर है :

"जग मोहन मोटर से उतर के कचहरी के संड़क पकड़, अभी तनिके दूर गइल रहलन कि ऊ झंखाड़ नीम के फेड़ भेंटा गइल। घड़घड़ा के सामने के दुआरी पर पहुँच गइले आ सांय सांय क के चन्दा! चन्दा! गोहरावे लगले आ रहि-रहि के केवड़ियों खटकावे लगले। मन त खुसी से फूलि के कुप्पा यइल रहे, अब फूटे तब फूटे। केवाड़ी खूले में देर होत रहे आ इनका दिल में रेल दउरत रहे। बड़ी देर के बाद केवाड़ी खोले के आहट मिलल। जगमोहन खुसी के मारे दूनो आंख मूँदि लेलन, आ केवाड़ी खुलते भरि अँकवारी चन्दा के धके कहे लगलन—"प्यारी हम पहुँच गइलीं।"

"बाकी त हनिकर धोयान टूटि गइल जब एक साथ चार-पाँच आदिमी ताली पीट-पीट के हँसत सुनाइल आ आंख खोलते देख लें कि चन्दा के जगह खदेरन के भरि अँकवारी धइले बाड़न।"

उपर्युक्त उद्धरण में हास्य का पुट कितना गहरा है। लेखिका ने ऐसी परिस्थिति पाठकों के सामने उपस्थित कर दी है जिसे पढ़कर हँसे बिना कोई नहीं रह सकता। इसी प्रकार 'प्रोफेसर' शीर्षक कहानी में भी राधिका-देवी जी ने बड़ी सुन्दरता से हास्यरस की सृष्टि की है। हेडमास्टरनी को

किस प्रकार से अन्त में बेवकूफ बनाया गया है यह देखते ही बनता है। 'मन्तर' नामक आपकी कहानी भी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। 'होरी-ह-अअ' कहानी में तिवारीजी का हुलिया पढ़कर हँसी को रोकना बड़ा कठिन हो जाता है :

भांग के निसा में (तिवारी जी के) मलकत लाल आंख, रसगुल्ला अइसन नाक, बीच में फारल पावरोटी अइसन ओठ, जम्हार अइसन जकड़ल मोंछ, गिरगिट अहसन गरदन आ सिरकिट अहसन देह।

राधिकादेवी की कहानियों में अपनी निजी विशेषता है, जो भोजपुरी के अन्य कहानी-लेखकों में नहीं पाई जाती। 'सुमन'जी की कहानियों में सादगी है, परन्तु इनकी कहानियों में हास्य तथा व्यंग्य का पुट होने के कारण बड़ी सरसता आ गई है। इनकी भाषा बड़ी चलती और मुहावरेदार है। इनके कहने का ढंग भी अपना अनूठा है। यदि राधिकादेवी जी की कहानियोंका संग्रह प्रकाशित हो जाय तो उससे बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होगी।

(ग) नाटक

नाटक-रचना में भोजपुरी भाषा का प्रयोग करने का सर्वप्रथम श्रेय पं० रविदत्त शुक्ल को प्राप्त है जिन्होंने अपने 'देवाक्षर चरित' नामक नाटक की रचना सन् १८८४ ई० में की थी। जैसा कि इसके नाम से विदित होता है यह ग्रन्थ नागरी लिपि के प्रचार के समर्थन में लिखा गया था। जिस समय यह नाटक लिखा गया था। उस समय कचहरियों में उर्दू भाषा तथा फारसी लिपि का बोल-बाला था। हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। अतः कचहरियों में नागरी लिपि को स्थान देने की अपील इस पुस्तक में की गई है।

यह नाटक प्रहसन है, जिसमें जन-मन का अनुरंजन किया गया है। परन्तु इसके साथ ही तत्कालीन सरकारी विभागों में प्रचलित बुराइयाँ— जैसे घूसखोरी आदि को दिखलाकर जनता को शिक्षित बनाने का भी

प्रयत्न किया गया है। इस नाटक की भाषा खड़ी बोली है, परन्तु इसके तीसरे और चौथे अंक भोजपुरी भाषा में लिखे गए हैं। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। भोजपुरी के ठेठ शब्दों का प्रयोग इसमें प्रचुर परिणाम में किया गया है। बीच-बीच में भोजपुरी कहावतों का प्रयोग बड़ी सुन्दर रीति से हुआ है। जिससे भाषा में बड़ा सौन्दर्य आ गया है। एक देहाती की यह उक्ति कितनी सुन्दर है :

"रउवां रुपया वाला बाटीं अदालत लड़ब, पै हमन पांच के तो एक जून पेट भर खहहु के ठिकाना नाहीं बाय, अदालत कहां से लड़ब। पहिले 'एक कवर भीतर तब देवता औ पित्तर' एक ओर भगवानों कै कोप हमरन पर बा कि कह साल सै सूखे पड़ल जात बाय। उ कहावत ठीक जान परैला कि 'निबलन कै दैवो सतावैं लै।"

ऊपर के उद्धरण में भोजपुरी के ठेठ शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे वेला या समय के अर्थ में 'जून' का प्रयोग। यह शब्द ठेट भोजपुरी का है। इसके साथ कहावतों का सन्निवेश भी बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। 'एक कवर भीतर तब देवता औ पित्तर' यह भोजपुरी की सुप्रसिद्ध कहावत है, जिसका अर्थ 'भूखे भजन न होय गुपाला' के अर्थ में किया जाता है।

भोजपुरी प्रदेश के निवासी किसी प्रकार अपना सब-कुछ बेचकर भी मुकदमा लड़ने के लिए तैयार रहते हैं। इसका उल्लेख नीचे के अवतरण में किया गया है :

"हाइ कोरट बिलायत, जहां तक होई घर दुआर बेंचिकै, सतुआ नून खाइकै, मुकदमा लड़ल जाई।"

फारसी लिपि के दोषों को बतलाता हुआ इस नाटक का लेखक अपने एक पात्र के मुँह से कहलवाता है कि :

"दोहाई साहब कै, सरकार हमनी के हाकिम औ मां-बाप बराबर हईं। जो सरकार किहां से नियाव ना होई तो उजड़ जाव। देखीं जवन ई फारसी में खाना-पूरी होत बाय एमें बड़ा उपद्रव मची। हमरा सीर

के सरहमैय्यन लिखल गइल बा।"

इसलिए नागरी लिपि का कचहरियों में प्रयोग करने की वकालत करता हुआ लेखक कहता है कि :

"इब्तदाई तालीम कभी कामयाब नहीं हो सकती, जब तक नागरी अक्षर कचहरियों में न जारी किये जायें।"

यह 'देवाक्षर-चरित' नामक नाटक यद्यपि बहुत छोटा है परन्तु यह अनेक दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है यह भोजपुरी भाषा का सर्वप्रथम नाटक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व इस नाटक के रचयिता ने नागरी लिपि को कचहरियों में स्थान दिलाने का प्रयास किया था। सम्भवतः इस दिशा में यह प्रथम प्रयत्न था।

राहुल-नाटक-चक्र

महापण्डित, त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन ने भोजपुरी भाषा में अनेक नाटकों की रचना की है; जिनके नाम निम्नांकित हैं—(१) नइकी दुनिया, (२) ढुनमुन नेता, (३) मेहरारून के दुरदसा, (४) जोंक, (५) इ हमार लड़ाई, (६) देश-रक्षक, (७) जपनिया राछ्छ, (८) जरमनवा के हार निहचय। ये नाटक समाजवादी दृष्टिकोण को लेकर लिखे गए हैं। इनके द्वारा समाजवाद के सिद्धान्तों का प्रचार करने का लक्ष्य दिखाई पड़ता है। कुछ नाटकों में भोजपुरी समाज का चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। 'नइकी दुनिया' और 'मेहरारून के दुरदसा' ऐसे ही नाटक हैं जिनमें विभिन्न सामाजिक दृश्य दिखलाये गए हैं।

बूढ़ी सास नवागत बहू को किस प्रकार गाली देती और तंग करती है इसका सजीव चित्रण 'नइकी दुनिया' में किया गया है। भारत के स्वतन्त्र होने पर (यह नाटक सन् १९४७ ई० के पहले लिखा गया था) इस देश में सुख और समृद्धि का राज्य होगा। इसका मनोरम

चित्र दिखलाया गया है। भोजपुरी समाज में स्त्रियों को कौन-कौन-से कष्ट भुगतने पड़ते हैं, युग-युग से पुरुष जाति ने स्त्रियों पर कितना भयंकर अत्याचार करके उन्हें घर में बन्दी बना रखा है, उन्हें किस प्रकार अधिकार से वंचित कर रखा है—इन सभी विषयों का वर्णन राहुलजी ने अपनी कुशल लेखनी से किया है। पुत्र तथा पुत्री एक ही माता-पिता से उत्पन्न होते हैं, परन्तु पुत्र-जन्म के अवसर पर हर्ष मनाया जाता है परन्तु पुत्री का जन्म दुःखदायी होता है। इस महान् भेद-भाव को लक्षित करके राहुलजी कहते हैं कि :

"एके माई बपवा से एक ही उदरवा में
दूनो के जनमवा भइल रे पुरुखवा।
पूत के जनमवा में नाच आ सोहर होला,
बेटि के जनम परे सोग रे पुरुखवा॥"

पुरुष किस प्रकार वेश्याओं को घर में रखकर अपनी ब्याहता, सती, साध्वी, धर्मपत्नी को मारते-पीटते हैं इसका सजीव चित्रण निम्नांकित पंक्तियों में किया गया है—

"अँखियै के देखते पतुरिया ले रखले बा,
मार गाली देला दिन-रात रे पुरुखवा।
ओहि रे खसुरवा मरदवा के किछु नाहीं,
तिरिया के भकसी झोंकावे रे पुरखवा॥"

'जोंक' नामक नाटक में समाज का शोषण करने वाले जितने लोग हैं—जैसे जमींदार, साहूकार, मिल-मालिक, राजा और महाराजा—उनकी पोल खोली गई है और गरीब किसानों की नग्न दशा का चित्रण किया गया है। देहाती किसान साहूकार और मिल-मालिक के दुहरे पाट के बीच में पड़कर किस प्रकार पीसा जाता है इसका मर्मस्पर्शी वर्णन लेखक ने किया है :

"हाइ हो देहिया लगली जोंक।
रात दिन हम कमवा में खटली, कपरा लेहली ठोंक।

डेढ़ा सवाई सहुआ कहले, दे लै करेजवा भोंक।
खोलि दुकनिया सेठवा लूटें, देवो के नाहीं रोक।
मिल में बइठि मजूरवा रोवै, भकसी देहले झोंक।"

जमींदार और मिल-मालिक किसान तथा मजदूरों को जोंक की तरह चूसते हैं। इसी बात को दिखलाने के लिए इस पुस्तक का नाम 'जोंक' रखा गया है।

जापानियों ने चीन देश पर आक्रमण करके जो जघन्य अत्याचार किया था उसी का वर्णन 'जपनिया राछछ' नाटक में हुआ है। 'जरमनवा के हार निहचय' में हिटलर के अत्याचारों का उल्लेख है। गत महायुद्ध में जर्मनी ने रूस देश पर चढ़ाई करके वहाँ की जनता को जो कष्ट दिया था उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया गया है। 'देश-रक्षक' में देश की रक्षा करने वाले सिपाहियों का वर्णन है। बर्मा में हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने जो बहादुरी का काम किया था उन कार्यों का वर्णन लेखक ने बड़े गर्व के साथ किया है। गरीब सिपाही अपनी जान देकर देश की रक्षा किस प्रकार करता है यही इस नाटक का प्रधान विषय है।

'ढुनमुन नेता' में ऐसे तथाकथित नेताओं का चरित्र-चित्रण किया गया है जिनका कोई सिद्धान्त नहीं होता। जो कभी किसी पार्टी के स्तम्भ के रूप में दिखाई पड़ते हैं, परन्तु अपने स्वार्थ की सिद्धि न पाते देख झट उस पार्टी को छोड़कर दूसरी पार्टी में जा मिलते हैं। ये नेता कभी जमींदारों की सहायता करने के लिए तैयार रहते हैं और कभी किसानों के हितों के हिमायती बनते हैं। सम्भवतः इसीलिए ऐसे नेताओं को 'ढुनमुन' कहा गया है। इनके चरित्र को बतलाता हुआ लेखक लिखता है कि ये लोग कभी चरखा और खद्दर का गीत गाते हैं और कभी किसान-मजदूर-राज्य स्थापित करने का राग अलापते हैं :

"एन कर ढुनमुन ह नाँव,
ई नेता हवे बड़ भारी।

कबहुँ चरखवा खदरवा के गीत गावैं,
मिलवो कबहुँ मँहतारी।
कबहुँ मजुरवा-किसनवा कं रजवा,
सेठन के कबहुँ पुछारी॥"

विगत महायुद्ध को साम्यवादी विचार-धारा वाले लोग 'जनता की लड़ाई' (पीपुल्स वार) कहा करते थे। इस नाटक में विद्वान् लेखक ने इसी बात को संक्षिप्त रूप में प्रतिपादित किया है।

राहुलजी के इन नाटक-चक्रों की भाषा बड़ी सरल, सीधी-सादी तथा मुहावरेदार है। राहुलजी ठेठ भोजपुरी लिखने में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने अंग्रेजी भाषा के जिन शब्दों का प्रयोग अपने नाटकों में किया है उन्हें पूर्णतया भोजपुरी का चोला प्रदान किया है; जैसे—बैरिस्टर का बलिहटर और मजिस्ट्रेट का मजिहटर। आपका भोजपुरी गद्य नितान्त प्राञ्जल, प्रवाहपूर्ण और सुष्ठु है।

पं० गोरखनाथ चौबे—चौबेजी ने 'उल्टा जमाना' नामक नाटक लिखा है। इसके नाम से ही इसके वर्ण्य विषय का कुछ अनुमान किया जा सकता है। आधुनिक पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ घर और गृहस्थी का काम किस प्रकार ताक पर रखकर सभा-सोसाइटियों में जाकर अपना समय व्यर्थ गँवाती हैं और घर की शान्ति को नष्ट कर देती हैं इसका सुन्दर वर्णन इस नाटक में किया गया है। आजकल समाज में जो उच्छृङ्खलता दिखाई पड़ती है—पुत्र पिता का कहना नहीं मानता, पतोहू सास की आज्ञा का उल्लंघन करती है और पढ़ी-लिखी पत्नी पति का निरादर करती है—उसका मार्मिक चित्रण इसमें उपलब्ध होता है। आजकल की नई शिक्षा की आलोचना करती हुई कोई स्त्री कहती है कि :

"का आजु ये कालिह क पढ़ाई-पढ़ाई कहला जाला जे मेहरारू मरदे से बाजें, पतोहि सासु से लड़े आ घर-दुआर छोड़ि के दुनिया में सभा करे। इ पढ़ाई क दिन चली दुधिया।" यह आलोचना कितनी सटीक है।

इस पुस्तक की भाषा बड़ी सरल और मुहाविरेदार है। विद्वान् लेखक ने मुहावरों और कहावतों का स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। जैसे : **एकर नतीजा इहे मिलल कि धोबी क कुक्कुर न घर क न घाट क; उर्दी के भाव पूछे छः पसेरी बनउर; सज्जी कुक्कुर गंगे नहइहें त हांड़ी के ढूढ़ी।"** इस प्रकार चौबेजी की भाषा-शैली मँजी हुई और चुस्त है।

राम विचार पाण्डेय— आधुनिक भोजपुरी कवियों के प्रसंग में इनका विशेष उल्लेख किया जा चुका है। ये कवि होने के अतिरिक्त एक सफल नाटककार भी हैं। इन्होंने 'कुँवरसिंह' नामक नाटक लिखा है, जिसमें सन् '५७ के सुप्रसिद्ध वीराग्रणी बाबू कुँवरसिंह का जीवन चित्रित किया गया है। यह नाटक विभिन्न अवसरों पर बड़ी सफलता के साथ खेला भी गया है। इस नाटक में ओज गुण की प्रधानता है। इसके पढ़ने से हृदय में वीर रस का संचार होने लगता है। जब बाबू कुँवरसिंह अपने सिपाहियों से पूछते हैं कि कहो, मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ने के लिए कौन-कौन लोग तैयार हैं। तब सब सिपाही एक स्वर से बोल उठते हैं कि "सब केहू तैयार बा" अर्थात् हम सब लोग तैयार हैं। यह दृश्य बड़ा ही सुन्दर तथा मर्मस्पर्शी है।

वीरेन्द्र किशोर सिनहा—इन्होंने एकाङ्की नाटक लिखने में अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनका 'रत्नावली' नामक एकाङ्की भोजपुरी पत्रिका में प्रकाशित हुआ है, जिसमें अपनी स्त्री रत्नावली द्वारा तुलसीदास को ज्ञान-प्राप्ति वाली कथा का वर्णन है। इनकी भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। कहीं-कहीं इन्होंने भोजपुरी के ठेठ शब्दों का प्रयोग बड़ी सुन्दरता से किया है। यहाँ केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

"कइसन कुपाकुप अन्हरिया बा। एही घर में ऊ होइहें। पुकारीं? बाकिर अहसन हहास बान्हके बरिसता कि बोलिओ ओहिजा लेना पहुँची। × × × ससुरारी के रसरियो चीकन होला! कतनो चीकन होय, हमरा परेम से जादे चीकन होइ तय नू हम एकरा से हारब।"

उपन्यास

भोजपुरी में किसी स्वतन्त्र मौलिक उपन्यास की रचना अभी तक नहीं हुई है। परन्तु 'भोजपुरी' पत्रिका के यशस्वी सम्पादक श्री रघुवंश-नारायण सिंह ने सुप्रसिद्ध रूसी उपन्यास-लेखक वाएडावासिलवेस्का के उपन्यास का 'बोरों' नाम से भोजपुरी में रूपान्तर उपस्थित करके इस अभाव की पूर्ति की है। श्री रघुवंश नारायण जी एक ऐसे लेखक हैं जिन्हें भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इसीलिए इनका अनुवाद बहुत सरस और सुन्दर बन पड़ा है। यह अनुवाद धारावाहिक रूप से 'भोजपुरी' में प्रकाशित हो रहा है। हमें रघुवंश नारायण जी से बड़ी आशाएँ हैं। अतः यह विश्वास किया जाता है कि वे अपनी प्रतिभा का अवदान मौलिक उपन्यास के रूप में भोजपुरी को शीघ्र ही प्रदान करेंगे।

: ६ :

लोक-काव्य-संग्रह

आजकल भोजपुरी में ऐसी बहुत-सी छोटी-छोटी फुटकर कविताओं की पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें गवैये गा-गाकर मेलों अथवा बाज़ारों में बेचते फिरते हैं। काव्य की दृष्टि से इन पुस्तिकाओं का विशेष मूल्य नहीं है, फिर भी भोजपुरी कविता के नमूने के रूप में इनका कुछ कम महत्त्व नहीं। इन पुस्तिकाओं में वर्तमान भोजपुरी-समाज का चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। इनमें कहीं तो मेलों में घूमने वाली स्त्रियों का उल्लेख किया गया है, तो कहीं गंगा-स्नान करने को जाने वाली महिलाओं का चित्रण पाया जाता है। ये गीत 'मेलाघुमनी' और 'गंगा-नहवनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'झरेलवा', 'बिदेसिया' और 'बनवारी' के गीत तो भोजपुरी-प्रदेश के प्रत्येक गाँव में गाये जाते हैं। 'झरेलवा' में आजकल के नवयुवकों की फ़ैशन-परस्ती की खिल्ली बड़े सुन्दर ढंग से उड़ाई गई है। इसी प्रकार से 'प्यारी सुन्दरी वियोग' में किसी विरहिणी की मनोव्यथा का चित्रण किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के लेखकों का नाम अज्ञात है। बहुत सम्भव है कि ये लेखक जीवित हों, शायद किन्हीं अपरिहार्य कारणों से इन्होंने इन

पुस्तकों में अपना नाम देना उचित न समझा हो। समाज का वास्तविक चित्रण होने के कारण इन गीतों द्वारा साधारण जनता का अनुरञ्जन प्रचुर मात्रा में होता है। गाँवों में जहाँ न तो रेडियो हैं और न सिनेमा-घर ही, वहाँ इन्हीं गीतों द्वारा जनता आनन्द प्राप्त करती है और अपने दुःखों को क्षण-भर के लिए भूल जाती है। यही इन पुस्तकों का महत्त्व है।

ये छोटी-छोटी कविता की पुस्तिकाएँ प्रधानतया दो स्थानों से प्रकाशित हुई हैं—(१) काशी और (२) कलकत्ता से।[1] काशी से जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

झरेलवा झरेलिया बहार—आजकल के फ़ैशनेबुल नवयुवकों को इस पुस्तक में 'झरेलवा' की संज्ञा दी गई है और सोसाइटी में तितली बनकर घूमने वाली लड़कियों को 'झरेलिया' कहा गया है। इन दोनों के फ़ैशन का वर्णन इस पुस्तिका में बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है।

मैना की जातसारी—इस पुस्तिका में मैना नामक किसी स्त्री के आदर्श प्रेम का वर्णन किया गया है। मैना की प्रेम-कथा बड़ी सरस तथा रोचक है। इसमें शृङ्गार तथा करुण रस का बड़ा रमणीय परिपाक बन पड़ा है। मैना किसी तालाब के किनारे अपने गले का हार निकाल-कर स्नान करने जाती है। इतने में कोई चील आकर उस हार को लेकर किसी विशाल वृक्ष के ऊपर की शाखा पर रख देती है। मैना का प्रेमी गोबिना उस हार को लेने के लिए उस वृक्ष पर चढ़ जाता है। परन्तु मैना उसको ऐसा करने के लिए मना करती हुई कहती है कि :

"गछिया उपर गोबिना चढ़ ले पलइया हो,
गोबिना सनेहिया मैना बोले ले हो राम।
सुनु-सुनु गोबिना रे प्रान के पियरवा हो,
दिलवा के हरवा तुहु यरवा हो राम।।

---

१. गुल्लूप्रसाद केदारनाथ बुकसेलर, कचौड़ी गली, बनारस सिटी। पं० रामनारायण त्रिवेदी, मैनेजर, दूधनाथ प्रेस, सैलकिया (हवड़ा) कलकत्ता।

आग लागों हरवा रामा फिर आव घरवा हो ,
हमरी बचनियां मनवां धारहु हो राम ।
गिरबे सागर बिचवा, जइबे पतलवा हो ,
तोहरी सुरतिया सपना होइहें हो राम ।।"

उपर्युक्त पंक्तियों में गोबिना के प्रति मैना का प्रेम उमड़ा पड़ता है।

पूर्वी की परी—इस पुस्तिका के लेखक का नाम पन्नालाल है। इसमें जो कविताएँ हैं, उनमें श्रीकृष्ण की बाल-लीला, भजन, प्रियतम का परदेस जाना और उसकी विरहिणी स्त्री का वियोग-वर्णन है।

चम्पा-चमेली की बातचीत के लेखक श्री कपूर हैं, जैसा कि नीचे की पंक्ति से पता चलता है :

"कजरी लिखलन कपूर, भइल पञ्च से मंजूर ।"

इस पुस्तिका में चम्पा और चमेली की प्रेम-कथा का वर्णन है। इसमें चम्पालाल की लम्पटता और चमेली की साधुता का सुन्दर चित्र खींचा गया है।

गारी मनोरंजन—इसके लेखक श्री नित्यानन्द हैं। भोजपुरी प्रदेश में विवाह के अवसर पर जब वर का पिता (समधी) कन्या के घर पर, विवाह मण्डप में भात खाने के लिए जाता है, उस समय गाली गाने की प्रथा है। यदि इस शुभ अवसर पर समधी को गाली गाकर न सुनाई जाय, तो वह अपना अपमान समझता है। इस पुस्तिका में इसी अवसर पर गाए जाने वाली गालियों का संग्रह है। चूँकि इस अवसर पर दी जाने वाली गालियाँ बड़ी मनोरंजक होती हैं, इसीलिए इस पुस्तक का नाम 'गाली मनोरंजन' रखा गया है। ये गालियाँ ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं हैं। इनमें अश्लीलता कहीं भी नहीं पाई जाती। एक उदाहरण लीजिए :

"हरियर बइरिया के उलटल पात हो।
बताव मोहन राम आपन जात हो।

माई मोरी धोबिन बाबा चुरिहार हो।
बहिनी जेंवाय कइली जाति भठियार हो ॥"

बारहमासा—इसमें बारह महीनों का बड़ा सरस वर्णन किया गया है। इस पुस्तिका में बारह सखियों का उल्लेख है, जो एक-एक करके प्रत्येक मास में होने वाले अपने कष्टों का वर्णन करती हैं। इसके प्रत्येक गीत में समाज का बड़ा सजीव चित्रण किया गया है। वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, कन्या का विक्रय आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों का वर्णन बड़े ही करुण शब्दों में हुआ है। इस पुस्तिका के लेखक ने भिन्न-भिन्न सखियों से अपने दुःख-कथन के व्याज से समाज में प्रचलित कुरीतियों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया है।

प्यारी सुन्दरी वियोग—इस पुस्तिका में किसी स्त्री के वियोग की करुण कथा बड़े ही मार्मिक शब्दों में कही गई है। भोजपुरी प्रदेश के निवासी अपनी जीविका की खोज में प्रायः कलकत्ता और रंगून जाते हैं। वे अनेक वर्षों के पश्चात् घर लौटते हैं। इस बीच में उनकी स्त्रियाँ विरहानल में जलती रहती हैं। इसी विषय का वर्णन इसमें किया गया है। करुण तथा शृङ्गार रस का मधुर परिपाक यहाँ देखने को मिलता है।

सोहर शृङ्गार—इस पुस्तिका के लेखक डॉ० मोतीचन्द श्रीवास्तव हैं, जो जिला आरा (बिहार) के निवासी हैं। इसमें सोहर छन्द में गीत लिखे गए हैं, जिनमें राम और कृष्ण के जन्म का वर्णन है।

सीता हरण—इस पुस्तिका के लेखक का नाम गोरखनाथ शर्मा है, जो बिहार राज्य के आरा जिले के निवासी हैं। इसमें सीता-हरण की कथा सोरठी राग में गाई गई है। पुस्तक के प्रारम्भ में दो पृष्ठों का लम्बा सुमिरन है, जिसमें सभी देवताओं की स्तुति की गई है। विराध-वध के अनन्तर राम शरभंग मुनि का दर्शन करते हैं और यहीं पर पुस्तक समाप्त हो जाती है।

ननदी भौजैया—इसके लेखक प्यारेराम हैं, जो बिहार राज्य के गया जिले के निवासी हैं। इसमें ननद और भौजाई (भावज) का

वार्तालाप है। इस पुस्तिका के कवि ने संवाद-प्रणाली का अनुसरण करके बाल-विवाह की बुराइयों को दिखलाने का प्रयत्न किया है। किसी प्रौढ़ा स्त्री का विवाह ऐसे व्यक्ति से होता है, जो अभी बालक है। वह अपने पति के 'अलप वयसवा' (अल्प वयस्क) होने के कारण अपनी मनोकामना को पूरी नहीं कर पाती। इस कारण वह अपने माता और पिता को कोसती है। उसकी आन्तरिक मनोवेदना का यह वर्णन कितना मर्मस्पर्शी है :

"चढ़लो जवानी मोरे अंग अंग फरकेसे,
पिया बिनु हिया नित फाटे रे भउजिया।
घेरेले बदरिया दामिनि घहराई उठे,
रगे रगे मदन सतावे रे भउजिया।
विरहा के आगि मोरा लागेला सरिरवा में,
फर फर फरके जोबन रे भउजिया।।"

युवती स्त्री का दुःख ऊपर की पंक्तियों में उमड़ा पड़ता है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में करुण रस भरा पड़ा है।

बड़ी गोपाल गारी—यह पुस्तिका विवाह के अवसर पर गाए जाने वाली गालियों का संग्रह है। इन गालियों को 'प्रेम पियारी' कहा गया है, क्योंकि यह सुनने वालों को अच्छी लगती है।

भिखारी नाटक उर्फ गंगा-स्नान—इसमें गंगा-स्नान के लिए जाने वाली स्त्रियों का वर्णन किया गया है। जब भोजपुरी स्त्रियाँ झुण्ड बनाकर गंगा-स्नान करने के लिए गीत गाती हुई चलती हैं तो वह दृश्य सचमुच ही बड़ा सुहावना मालूम होता है। यह वर्णन सुनिये :

"चल गोरिया करे गंगा असनानवा।
सारी, चोली पेन्हकर सब अभरनवां।
तेहि पर सोभी सोना, चांदी के गहनवां।
खाये खातरि बांध नून, सतुआ पिसनवां।
बने त बनात झट-पट पकवनवां।"

बापू का हत्या-काण्ड—इसके लेखक का नाम पं० रामएकबाल मिश्र है। जैसा कि इसके नाम से विदित होता है, इसमें महात्मा गांधी की हत्या का वर्णन किया गया है। इसकी भाषा करुण रस से पूर्ण है।

सोरठी का गीत—लेखक एस० पी० सिंह। कवि ने इसे पँवारा का नाम दिया है। सोरठी की कहानी बड़ी ही रोचक तथा मनोरंजक है। श्रोतागण इसे बड़े चाव से सुनते और आनन्द लेते हैं। इसी कथा को लेकर एक दूसरी पुस्तक भी लिखी गई है; जिसका नाम *सोरठी बृजाभार* है। यह ग्रन्थ महाकाव्य के रूप में लिखा गया है; जिसमें ६४ भाग हैं और पृष्ठों की संख्या ३३२ है। इसके लेखक का नाम बाबूलाल है, जो बिहार राज्य के गया जिले के निवासी हैं। कवि ने कथानक को स्पष्ट करने के लिए बीच-बीच में गद्य का भी प्रयोग किया गया है।

बिहुला गीत—इसमें बिहुला की कथा बड़ी रोचक भाषा में लिखी गई है। बिहुला की कहानी इतनी सरस और भाषा इतनी मर्मस्पर्शी है कि इसे सुनकर श्रोताओं का हृदय द्रवित हो जाता है। इस कथा का भोजपुरी प्रदेश में इतना प्रचार है कि अनेक कवियों ने इसके कथानक को लेकर काव्य-रचना की है। बंगला भाषा में भी इस कहानी के आधार पर अनेक काव्य-ग्रन्थों का निर्माण किया गया है।

शोभा नयका बनजारा—इस पुस्तक के लेखक श्री बाबूलाल हैं; जिनका उल्लेख अभी हो चुका है। यह पुस्तक २४ भागों में लिखी गई है। यह ग्रन्थ भोजपुरी महाकाव्य है, जिसमें शोभा-नयका नामक किसी बनजारे या सौदागर की कथा विस्तार से कही गई है।

गांधीजी का स्वर्गवास—लेखक गोस्वामी चन्द्रशेखर भारती हैं, जो बिहार राज्य के छपरा जिले के निवासी हैं। इसमें महात्मा गांधी की हत्या का वर्णन है। इसके साथ ही भारत के द्वारा स्वतन्त्रता-प्राप्ति और भारत-विभाजन का भी उल्लेख है।

नैहर खेलनी—इसके लेखक मुन्शी मुहम्मद हुसैन हैं। ये उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के निवासी हैं। इस पुस्तिका में नैहर (मायके)

में रहकर स्वच्छन्द रीति से विहार करने वाली स्त्रियों का वर्णन किया गया है। यद्यपि इस पुस्तिका का लेखक मुसलमान है परन्तु इसमें उर्दू या फ़ारसी का एक भी शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। इसकी भाषा ठेठ भोजपुरी है।

वनवारी-गीत—इस पुस्तिका के रचयिता महादेव प्रसाद सिंह 'घन-श्याम' हैं। भोजपुरी प्रदेश में वनवारी गीत बड़ा ही लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध है। जहाँ भी कहीं देहात में चले जाइये **'बनवारी हो हमरा के लरिका भतार'** का मधुर स्वर आपको सुनने को मिलेगा। किसी युवती स्त्री का विवाह ऐसे पति से हुआ है जो अभी बिलकुल बालक है। अतः वह स्त्री वनवारी अर्थात् श्री कृष्ण (भगवान्) से अपनी मनोव्यथा का वर्णन करती है। इसलिए इस गीत का नाम वनवारी-गीत पड़ गया है। इसमें तरुणी स्त्री की मनोवेदना का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। कुछ पंक्तियाँ सुनिये :

"सबका के देल भोला अन धन सोनवा,
बनवारी हो ! हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतली ओसरवा,
बनवारी हो, जरि गइले एड़िया से कपार।
थपरा से मार घइ बाँह झहराई,
बनवारी हो माई माई करेले गोहार।
चुप होख चुप होख हमरे बलमुआं,
बनवारी हो रहरी में बोलेला हुंडार
सोरह बरीस कर हमरी उमरिया,
बनवारी हो आठ कर सैयां हमार।"

उपर्युक्त गीत में भोजपुरी-समाज में प्रचलित बाल-विवाह का चित्रण बड़ा सुन्दर तथा सजीव हुआ है।

सास पतोहू का झगड़ा—लेखक डॉ० मोतीचन्द्र सिंह। इसमें सास और पतोहू के बीच नित्य-प्रति होने वाले झगड़े का वर्णन किया गया

है। इसके साथ ही ननद-भौजाई, और पति-पत्नी के पारस्परिक कलह का वर्णन भी कुछ कम मनोरञ्जक नहीं है।

भोजपुरी पद्य में लिखित उपर्युक्त पुस्तिकाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे ग्रन्थों की रचना भी हुई है जिन्हें साधारणतया प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है। इन ग्रन्थों का प्रकाशन दूधनाथ प्रेस, सलकिया (हवड़ा) कलकत्ता से हुआ है। इन ग्रन्थों में किसी लम्बे कथानक को काव्य का विषय बनाया गया है। इनमें से कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है—

लोरिकायन—भोजपुरी प्रदेश में वीराग्रणी लोरकी या लोरिकायन की कथा बड़ी प्रसिद्ध है। लोरकी एक वीर पुरुष था जिसने अनेक पराक्रम के कार्य किये। इसीकी जीवन-गाथा इस पुस्तक में गाई गई है। लोरकी की गाथा बहुत प्राचीन है, जिसे गवैये बड़े चाव तथा उमंग से गाया करते हैं। परन्तु इसका प्राचीन पाठ (Old version) अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। 'लोरिकायन' महादेव प्रसाद सिंह की लिखी नवीन रचना है, जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। यह वीर-रस-प्रधान काव्य है, जो दो खण्डों में लिखा गया है।

बिहुला विषहरी—इसमें बिहुला की कथा विस्तार के साथ वर्णित है। बिहुला की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। जिसे लेकर अनेक ग्रन्थों की रचना की गई है। इसी कथानक को लेकर लिखे गए 'बिहुला-गीत' का उल्लेख अभी पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। इस ग्रन्थ में ६ खण्ड हैं, जिसमें बिहुला तथा बाला लखन्दर की प्रेम-कथा गाई गई है। यह कथा करुण रस से ओत-प्रोत है।

बाला लखन्दर अथवा बिहुला विषधरी—इस ग्रन्थ का भी वर्ण्य विषय वही है जो 'बिहुला विषहरी' का है। इसके लेखक महादेव प्रसाद सिंह हैं।

नयकवा बनजारा—इस पुस्तक का भी वर्ण्य विषय वही है जो 'शोभानयका बनजारा' नामक काव्य-पुस्तिका का है। इसका उल्लेख

पहले किया जा चुका है।

कुँवर विजयी—कुँवर विजयी की कथा लोरकी की भाँति ही भोजपुरी-प्रदेश में प्रसिद्ध है। कुँवर विजयी विजयमल के नाम से भी विख्यात है। यह एक शूर तथा वीर पुरुष था, जिसने अनेक पराक्रम के कार्य किए हैं। यह पुस्तक सोलह भागों में लिखी गई है। इसे भोजपुरी का महाकाव्य कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।

राजा ढोलन के गीत—राजा नल के पुत्र का नाम ढोलन था। यह पुस्तक बारह भागों में लिखी गई है, जिसमें इन्हीं ढोलन के जीवन-चरित्र का वर्णन सुन्दर पद्यों में किया गया है। इसमें खड़ी बोली गद्य का भी प्रयोग हुआ है। 'कुँवर विजयी' तथा इस पुस्तक के रचयिता श्री महादेव प्रसाद सिंह हैं।

: ७ :

लोक-नृत्य—नाट्य

भोजपुरी में लिखे गए नाटकों की चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। यहाँ पाठकों के सामने भोजपुरी नृत्य-नाट्य (Dance-drama) का वर्णन उपस्थित किया जाता है। यह नृत्य-नाट्य 'विदेसिया' के नाम से प्रसिद्ध है। भोजपुरी प्रदेश में इस नृत्य-नाट्य का अत्यन्त अधिक प्रचार है। इसे देखने के लिए हजारों आदमियों की भीड़ इकट्ठी हुआ करती है।

विदेसिया नाटक

यदि किसी भोजपुरी गाँव में रात के समय आप हजारों मनुष्यों की भीड़ एकत्रित देखें, जिसके बीच में लाल पगड़ी वाले भी दिखाई पड़ते हों तथा जहाँ से गाने-बजाने की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही हो, तो यह निश्चय ही समझ लीजिए कि वहाँ 'विदेसिया' नाटक हो रहा है। देहातों में इस नाटक के द्वारा जन-मन का जितना अधिक अनुरञ्जन होता है उतना अन्य किसी साधन के द्वारा नहीं। इसे देखने के लिए जनता की भीड़ टूटी पड़ती है; जिसका समुचित प्रबन्ध करने के लिए पुलिस की

तैनाती करनी पड़ती है।

जीवन-वृत्त

इस 'विदेसिया नाटक' के लेखक भिखारी ठाकुर हैं। ये बिहार राज्य के छपरा जिले के कुतुबपुर गाँव के निवासी हैं। जाति के नाई होने के कारण ये अपने नाम के आगे 'ठाकुर' उपाधि लिखा करते हैं। भिखारी ठाकुर ने अपना परिचय स्वयं देते हुए इस प्रकार लिखा है :

"जाति क हजाम मोर कुतुबपुर ह मोकाम,
छपरा से तीन मील दियरा में बाबू जो।
पुरुब के कोना पर गंगा के किनारे पर,
जाति पेसा बाटे विद्या नाहीं बाटे बाबूजी॥"

भिखारी ठाकुर ने किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं प्राप्त की। परन्तु इन्हें ऐसी दैवी प्रतिभा अवश्य प्राप्त है जिसके द्वारा इन्होंने अशिक्षित होते हुए भी भोजपुरी में इतनी साहित्य-सृष्टि की है। भिखारी ठाकुर—जो भोजपुरी प्रदेश में 'भिखरिया' के नाम से सुप्रसिद्ध हैं—की प्रवृत्ति लड़कपन से ही गाने-बजाने की ओर अधिक थी। इन्हें रामलीला देखने का बड़ा शौक था और वे उसमें भाग भी लिया करते थे। कुछ बड़े होने पर इन्होंने अपने कुछ साथियों को इकट्ठा करके राम-कथा का अभिनय करना प्रारम्भ कर दिया। इसमें सफलता मिलने पर इन्होंने 'विदेसिया' नाटक की रचना की और उसे भिन्न-भिन्न स्थानों में अभिनीत करके प्रदर्शित किया। भिखारी ठाकुर कुशल नाटककार भी हैं और एक सफल अभिनेता भी। भगवान् ने इन्हें गला भी अच्छा दिया है। अतः नाटकीय कला, अभिनय और संगीत-स्वर-साधना की इस त्रिवेणी के द्वारा इनका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया। कुछ ही दिनों में 'विदेसिया' नाटक घरेलू बन गया और उसे देखने के लिए जनता की अपार भीड़ इकट्ठी होने लगी। जिस बारात में विदेसिया नाटक दिखलाया जाता था वहाँ जन-समुद्र लहराने लगता था। भोजपुरी प्रदेश में आज

'विदेसिया' नाटक का जितना प्रचार है उतना अन्य किसी नाटक का नहीं।

विदेसिया नाटक की कथा-वस्तु

भोजपुरी प्रदेश के लोग जीविकोपार्जन के लिए प्रायः कलकत्ता और रंगून जाया करते हैं। ऐसा ही कोई व्यक्ति कलकत्ता जाकर पुलिस में भर्ती हो गया है। छुट्टी न मिलने के कारण वह अनेक वर्षों तक घर नहीं लौटता। कलकत्ता में वह किसी बंगालिन युवती से प्रेम करने लगता है और उसके प्रेम-जाल में फँसकर घर पर रहने वाली अपनी व्याहता स्त्री की खोज-खबर तक नहीं लेता। न तो वह उसके पास कोई पत्र भेजता है, और न खाने-पीने के लिए रुपया ही। वह सती स्त्री अनेक वर्षों तक पति का समाचार न मिलने से उसके विरह में बेचैन हो जाती है। एक दिन रास्ते में जाता हुआ कोई बटोही उसे मिलता है। वह उसे अपनी दुःख-गाथा सुनाती है और उससे प्रार्थना करती है कि ए बटोही भइया ! तुम हमारा संदेश मेरे पति के पास ले जाओ ! इस पर वह बटोही उत्तर देता है कि मैं तुम्हारे पति को नहीं पहचानता। अतएव मैं तुम्हारा सन्देश कैसे पहुँचा सकता हूँ ? इस पर वह स्त्री अपने पति का हुलिया बतलाती हुई कहती है कि मेरे पति की आँखें बड़ी-बड़ी हैं, उनकी नाक तोते की नाक की तरह 'चोख' है, उनके होंठ पान के पत्ते की तरह पतले हैं, दाँत बिजली के समान सफेद और चमकने वाले हैं। उनकी मूँछें काली-काली हैं; ऐसा मालूम होता है कि उन पर भौंरे मँडरा रहे हों। उनके सिर पर लाल पगड़ी और ललाट पर लाल तिलक शोभायमान है। पति का यह हुलिया कितनी सजीव तथा रमणीय है :

> **"हमरा बलमुजी के बड़ी-बड़ी अँखिया से,**
> **चोखे चोखे बाड़े नैना कोर रे बटोहिया।**
> **ओठवा त बाड़े जैसे फतरल पनवाँ से,**
> **नकिया सुगनवाँ के ठोर रे बटोहिया।**

दँतवा तो सोभे जैसे चमके बिजुलिया से,
मोछियन भँवरा गुँजारे रे बटोहिया।
मथवा में सोभे रामा लाली लाली पगड़ी से,
रोरी बुना सोभेला लिलार रे बटोहिया॥"

वह परोपकारी बटोही पूरब देश को जाता है और बड़ी कठिनाई से उस स्त्री के पति का पता लगाता है। बटोही उस परदेशी पति से उसकी प्रियतमा की दुःख-गाथा सुनाता है और कहता है कि तुम्हारी स्त्री (तुम्हारे) वियोग में सूखकर काँटा हो गई है। यह सुनते ही वह परदेसी मूर्छित हो जाता है। होश में आने पर वह उदासीन रहने लगता है और घर लौट जाने की चिन्ता करता है। उसे उदासीन देखकर उसकी रक्षिता स्त्री इसका कारण पूछती है और यह जानने पर कि वह घर लौटने के लिए व्याकुल है उसे घर न जाने के लिए प्रार्थना करती है। रक्षिता अपना प्रेम-जाल फैलाती है, उसे तरह-तरह का प्रलोभन देती है। परन्तु वह परदेसी सिपाही अपनी व्याहता स्त्री के प्रेम से आकर्षित होकर उस रक्षिता की बात न मानकर, अपनी नौकरी छोड़कर घर लौट आता है। वह रात में अपने घर पहुँचता है और अँधेरे में अपने घर का दरवाजा खटाखटाता है। उसकी स्त्री उसे चोर समझकर डर जाती है और रोती हुई कहती है कि आज मेरे सिपाही पति घर पर होते तो इस चोर को मार भगाते। स्त्री के यह पूछने पर कि तुम कौन हो वह उत्तर देता है कि मैं तुम्हारा व्याहता पति हूँ। तब वह स्त्री डरते-डरते दरवाज़ा खोलती है और अनेक वर्षों के बाद आये हुए अपने परदेशी पति को सामने खड़ा देखकर अत्यन्त प्रसन्नता के कारण मूर्छित हो जाती है। पति उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लेता है।

संक्षेप में 'विदेसिया' नाटक की यही कथा है।

'विदेसिया' का अभिनय तथा नृत्य

'विदेसिया' नाटक का अभिनय प्रायः भोजपुरी बारातों तथा अन्य

विशेष अवसरों पर हुआ करता है। इसे देखने के लिए दर्शकों की इतनी अधिक भीड़ हुआ करती है कि इसे किसी घिरे हुए स्थान—जैसे हाल, शामियाना आदि—में करना असम्भव है। इसलिए इसका अभिनय खुले हुए रंग-मंच (ओपेन थियेटर) पर हुआ करता है। नाटक करने वाले खुले मैदान में दो-चार चौकियों (काठ के तख्तों) को रखकर रंगमंच तैयार कर लेते हैं। चौकियों के पास कोई कपड़ा तानकर 'आड़' कर लेते हैं। रंगमंच पर किसी परदे या यवनिका का प्रबन्ध नहीं रहता। यहाँ नेपथ्य का भी अभाव रहता है। विभिन्न पात्र किसी पेड़ की आड़ में खड़े होकर अपनी वेश-भूषा बदलकर तैयार होते हैं और रंगमंच पर आकर अपना अभिनय करते हैं। अभिनय समाप्त होने के पश्चात् वे चले जाते हैं और फिर दूसरा पात्र इसी प्रकार आकर अपना अभिनय दिखलाता है। 'विदेसिया' नाटक में स्त्री पात्र का काम भी पुरुष ही किया करते हैं। भोजपुरी-प्रदेश में पर्दे की प्रथा बहुत है। अतएव देहातों में रंगमंच पर किसी स्त्री का आकर अभिनय दिखलाना सम्भव नहीं है। इस नाटक में विभिन्न पात्रों का कार्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति करते हैं परन्तु अभिनेताओं की कमी के कारण कभी-कभी एक ही व्यक्ति अनेक पात्रों का अभिनय करता है। नौजवान छोकरे, जिन्हें भोजपुरी में लौंड़ा कहते हैं, स्त्री-पात्र का अभिनय करने के लिए विशेष उपयुक्त समझे जाते हैं। वे अपनी वेश-भूषा तथा प्रसाधन द्वारा स्त्री-पात्र का इतना सजीव अभिनय करते हैं कि यह जानना कठिन हो जाता है कि अभिनय करने वाला पात्र स्त्री है अथवा पुरुष।

अभिनय करने वाले पात्र प्रसंगानुसार एक या दो-तीन की संख्या में रंगमंच पर आते हैं और विदेसिया के कथानक को लेकर अभिनय करते हैं। अभिनय करते समय वे बीच-बीच में नाचते भी जाते हैं। नाचने के समय ढोल, सरंगी (सारंगी) तथा हारमोनियम भी बजती रहती है। इन नर्तकों को शास्त्रीय नृत्य की विधिवत् ट्रेनिंग नहीं दी जाती। अतएव वे संगीत के ताल पर नृत्य न करके स्वतन्त्र रूप से नाचते हैं। इस

नृत्य में उछल-कूद बहुत होती है। नृत्य करने वाला कभी यहाँ दिखाई देता है और कभी वहाँ। कमर में घाँघरा और पैरों में नूपुर पहनकर वह काफी तेजी से नृत्य करता है। इस नृत्य में पैरों का संचालन बड़ी तीव्र गति से किया जाता है। जो नर्तक जितनी तेजी से यह कार्य कर सकता है वह उतना ही सफल समझा जाता है। कमर पर अपने हाथों को रखकर अपनी पतली कमर को लचकाता हुआ तथा द्रुत गति से पैरों का विक्षेप करता हुआ भोजपुरी नर्तक बारात के शामियाने में समाँ बाँध देता है। उसे देखकर दर्शकों के मुँह से अनायास 'वाह-वाह' निकलने लगती है। कुछ गुण-ग्राही उसकी नृत्य-कला पर मुग्ध होकर अपनी गुण-ग्राहकता प्रकट करने के लिए उसके पास चवन्नी, अठन्नी और रुपया तक फेंकने लगते हैं। यह नृत्य अधिक देर तक नहीं चलता। यह थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाता है और नाटकीय वस्तु के अभिनय का क्रम फिर प्रारम्भ हो जाता है। नृत्य तथा अभिनय के अवसर पर प्रायः बाजा बजता रहता है। विशेष कथोपकथन के अवसर पर उसे बन्द कर दिया जाता है जिससे श्रोता अच्छी तरह से वार्तालाप को सुन सकें। इस तरह विदेसिया नाटक संगीत, अभिनय और नृत्य इन तीनों की त्रिवेणी है; जिसमें अवगाहन कर दर्शकगण परम आनन्द को प्राप्त करते हैं।

विदेसिया सम्प्रदाय

भिखारी ठाकुर एक अच्छे गवैया और सफल अभिनेता हैं अतएव जिस 'विदेसिया' नाटक के अभिनय में वे स्वयं भाग लेते हैं उसमें दर्शकों की भीड़ का कुछ ठिकाना नहीं रहता! अपनी युवावस्था में भिखारी ठाकुर विवाह के अवसर पर बारातों में जाकर स्वयं अपने नाटक का अभिनय किया करते थे, परन्तु अब वे बूढ़े हो गए हैं अतः अभिनय करने के लिए अब प्रायः बारातों में नहीं जाया करते। भिखारी के शिष्यों ने, जो उनके साथ उनकी मण्डली में नाचते तथा अभिनय किया करते थे—अपनी अलग-अलग मण्डलियाँ बना ली हैं और वे अपने को भिखारी का असली

शिष्य बतलाकर नाटक खेलने का व्यवसाय करते हैं। भिखारी के असली तथा साक्षात् शिष्य होने के कारण जनता इनकी मण्डली को नाटक करने के लिए बुलाती है। कुछ लोग, जो भिखारी ठाकुर के शिष्य नहीं हैं, वे झूठे ही अपने को उनका शिष्य बतलाते हैं और अभिनय के लिए एक 'गिरोह' (मण्डली) बनाकर नाटक किया करते हैं। भिखारी का शिष्य कहने में ये अपने को गौरवान्वित समझते हैं और जनता भी इन मण्डलियों का आदर करती है। ऐसी नाटकीय मण्डलियाँ बलिया, गोरखपुर, छपरा तथा आरा जिले में सैकड़ों की संख्या में पाई जाती हैं।

इन उपर्युक्त जिलों में 'विदेसिया' नामक नृत्य तथा नाट्य का एक सम्प्रदाय (विदेसिया स्कूल आफ डांस एण्ड ड्रामा) ही चल पड़ा है। इस प्रकार भिखारी ठाकुर को केवल 'विदेसिया' नाटक को लिखने तथा अभिनय करने का ही श्रेय नहीं प्राप्त है, बल्कि नृत्य और नाट्य के एक नये सम्प्रदाय को प्रवर्त्तित करने का भी गौरव प्राप्त है। इनको 'विदेसिया' नाटक-मण्डली की नकल पर आज सैकड़ों मण्डलियाँ स्थापित हैं जो 'विदेसिया' नाटक का अभिनय करके अपनी जीविका का उपार्जन किया करती हैं। आज 'विदेसिया' केवल एक नाटक-मात्र ही नहीं, प्रत्युत वह तो एक नाटकीय सम्प्रदाय का प्रतीक है।

'विदेसिया' नाटक का नामकरण उस घटना के आधार पर किया गया है जिसमें विदेस में गये हुए किसी व्यक्ति की कथा का वर्णन है। प्रारम्भ में 'विदेसिया' के नाम से जो नाटक खेले जाते थे उनका कथानक ऐसा ही हुआ करता था। परन्तु आजकल बहुत-से ऐसे छोटे-मोटे नाटक लिखे गए हैं "जिनमें भोजपुरी समाज—जैसे सास-पतोहू का झगड़ा, पिता-पुत्र में वैमनस्य, भाई-भाई में वैर, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बेटी बेचना तथा दान-दहेज की प्रथा—का चित्रण किया गया है। यद्यपि इन नाटकों का कथानक विदेश में गये हुए व्यक्ति की कथा नहीं है फिर भी इनको विदेसिया नाटक का नाम दिया गया है। इसका प्रधान कारण मूल विदेसिया नाटक की लोकप्रियता तथा प्रसिद्धि ही मानी

जा सकती है। 'विदेसिया' की नकल पर एक परदेसिया गीत तथा नाटक भी प्रकाशित हुआ है, परन्तु वह विशेष प्रसिद्ध नहीं हो सका है।

'विदेसिया' के नाम से जो लोक-गीत भोजपुरी-प्रदेश में अत्यन्त लोकप्रिय हैं वह इस प्रकार हैं। इसमें प्रोषित-पतिका नायिका की विरह-व्यथा का वर्णन बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में किया गया है[1] :

"मचिया बइठल धनी मने-मने समुझे से,
भुइयां लोटेला लामी केस रे विदेसिया ॥ १ ॥
गवना कराई सइयां घर बइठवले से,
अपने चलेले परदेस रे विदेसिया ॥ २ ॥
चढ़ली जवनियां बइरिनि भइली, हमरी से,
के मोर हरि हें कलेस रे विदेशिया ॥ ३ ॥
केकरा ले लिखिके मैं पतियां पठइबों से,
केकरा से पठवों सनेस रे विदेसिया ॥ ४ ॥
तोहरे कारन सइयां भभूती रमइबों से,
धरबों जोगनियां के भेस रे विदेसिया ॥ ५ ॥
कबलों ले फिरिहे दइब निरमोहिया से,
मोरा विरहिनियां के भाग रे विदेसिया ॥ ६ ॥
हमरो सुरति सइयां तुहु विसरवले से,
रहले सवति-रस पागि रे विदेसिया ॥ ७ ॥
दिनवा बितेला सइयां बटिया जोहत तोर,
रतिया बितेला जागि-जागि रे विदेसिया ॥ ८ ॥
घरी राति गइले पहर ,रात गइलें से,
धधके करेजवा में आगि रे विदेसिया ॥ ९ ॥
अमवा मोजरि गइले लगले टिकोरवा से,
दिन पर दिन पियराला रे विदेसिया ॥ १० ॥

---

१. भिखारी ठाकुर लिखित—विदेसिया नाटक से उद्धृत।

एक दिन बहि जइहें जुलुमी बयरिया से,
डारि पात जइहें भहराइ रे विदेसिया ।। ११ ।।
झमकि के चढ़ली में अपनी अटरिया से,
चारु ओर चितवों चिहाइ रे विदेसिया ।। १२ ।।
कतहूँ ना देखों रामा सइयाँ के सुरतिया से,
जियरा त गइले मुरझाई रे विदेसिया ।। १३ ।।

लोक-संगीत

लोक-गीतों की आत्मा लोक-संगीत है। लोक-संगीत अत्यन्त प्राचीन है। बहुत-से विद्वानों का मत है कि लोक-संगीत का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर बहुत पड़ा है। यदि यह कहा जाय कि शास्त्रीय संगीत का जन्म लोक-संगीत से हुआ है तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। अतः इसकी विशेषताओं का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

लोक-जीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब लोक-संगीत में दिखाई पड़ता है, क्योंकि लोक-गीतों में शब्दों और स्वरों के चयन में कृत्रिमता का अभाव रहता है। इनमें लोक-जीवन का सीधा-सादा परिचय होता है। लोक-गीत सरल, सुन्दर, अनुभूतिमय तथा संगीतमय होते हैं। कदाचित् ही कोई ऐसा लोक-गीत हो जो लोक-संगीत से अनुप्राणित न हुआ हो।

भोजपुरी लोक-संगीत में अकेले गाने से कहीं अधिक सामूहिक रूप (कोरस) से गाने का विशेष महत्त्व है। सच तो यह है कि लोक-संगीत के वास्तविक के रूप का परिचय सामूहिक गान में ही मिलता है। भोजपुरी-प्रदेश में लोक-संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में से ढोलक, खंजड़ी, सारङ्गी, झाँझ और करताल उल्लेखनीय हैं। इनमें से ढोलक सबसे अधिक लोक-प्रिय तथा महत्त्वपूर्ण है। ढोलक के बाजे में कहीं-कहीं अद्भुत विकास दिखाई पड़ता है। इसके पृथक् बोल होते हैं। कुछ ढोलक

बजाने वाले तो ऐसे होते हैं जो तबले के सदृश ही ढोलक पर भी पूर्ण विस्तार और चमत्कार दिखलाते हैं। लोक-गीत अधिकतर ढोलक पर ही गाए जाते हैं।

भोजपुरी लोक-गीतों में प्रायः सात शुद्ध स्वरों और दो विकृत—कोमल गन्धार और कोमल निषाद-स्वरों का प्रयोग मिलता है अर्थात् उनमें मुख्यतः विलावल, खमाज और काफ़ी थाटों के स्वर लगते हैं। शास्त्रीय-संगीत की दृष्टि से भी इन थाटों के राग अपेक्षाकृत अधिक सरल और सुग्राह्य होते हैं। कुछ गीतों में अन्य विकृत स्वरों का भी प्रयोग मिलता है। जैसे—उदाहरण के लिए कोमल धैवत और कोमल ऋषभ। इनमें भी कोमल ऋषभ का प्रयोग कोमल धैवत से कम मिलता है। तीव्र मध्यम से युक्त भोजपुरी गीत कदाचित् ही दो-चार मिलेंगे। किसी-किसी गीत की स्वर-परिधि भी बहुत संक्षिप्त होती है। अधिकांश लोक-गीतों में तीन-चार अथवा पाँच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं। इस देश में शास्त्रीय संगीत के प्रचार और विकास के साथ-साथ गाँव और नगर में अधिकाधिक सम्पर्क होने के कारण लोक-गीतों की स्वर-सीमाएँ भी बढ़ती जा रही हैं।

लोक-धुन बहुत ही सरल होती हैं। परन्तु इनकी सरलता का यह तात्पर्य नहीं है कि इनमें गायन-क्रिया के सौन्दर्य-वर्द्धक उपकरणों का पूर्णतया अभाव है। ऐसे अनेक लोक-गायक पाए जाते हैं जो सरल-से-सरल धुन को गाते समय भी स्वभावतः अनेक प्रकार के खमटे, मुकरियाँ और मींड़ का प्रयोग अनायास करते हैं। शास्त्रीय संगीत में अनेक रागों का जन्म लोक-धुनों से हुआ है; जैसे—आसावरी, झिंझोरी, पहाड़ी आदि।

भोजपुरी लोक-गीतों में प्रायः कहरवा, जत, दादरा, खेमटा और दीपचन्दी (चाँचर) तालों का प्रयोग अधिक पाया जाता है। इनमें से कहरवा ताल का प्रयोग तो प्रायः ८० प्रतिशत लोक-गीतों में किया गया है। बहुरा, शीतला माता, पिड़िया, छठीमाता, सोरठी, कजरी, बिरहा, पचरा, गोड़ऊ, सोहनी, झूमर, पूर्वी, निर्गुन और पाराती

(भजन) आदि गीत 'कहरवा' ताल में गाए जाते हैं और सोहर, जनेऊ, गवना, गोधन, फगुआ, चैता, जतसार आदि गीत 'जत' ताल में गेय हैं। सुप्रसिद्ध भोजपुरी लोक-गीत विदेशिया को दीपचन्दी ताल में गाया जाता है। झूमर—जिसे स्त्रियाँ झूम-झूमकर समवेत स्वर (कोरस) से गाती हैं—दादरा में गाया जाता है। कहीं-कहीं यह भी देखने में आता है कि एक ही लोक-गीत दो विभिन्न तालों में गेय हैं। उदाहरण के लिए विदेशिया गीत 'दीपचन्दी' तथा 'जत' इन दोनों तालों में गाया जाता है। इसी प्रकार से गायक लोग झूमर को 'कहरवा' तथा 'दादरा' दोनों तालों में गाते हैं।

इन पंक्तियों के लेखक ने लगभग १०० भोजपुरी लोक-गीतों की स्वर-लिपि (नोटेशन) बड़े परिश्रम से श्री महेश नारायण सक्सेना एम० ए०, लेक्चर, प्रयाग विश्वविद्यालय की सहायता से तैयार की है। भोजपुरी लोक-गीतों में कहरवा, जत और दीपचन्दी ताल ही अधिक प्रचलित तथा महत्त्वपूर्ण है। अतः इन तालों में गाये गए लोक-गीतों की स्वर-लिपि नमूने के रूप में यहाँ प्रस्तुत की जाती है :

गीत—झूमर
ताल—कहरवा
स्थायी

सारे म—म प प--प म प—प म ग रे रे
दिन वा ऽके व इ री रे सा सु ऽ न न दि या मैं

सा ग
सा—रे ग रे —रे ग प प—म ग ग रे—
का ऽ क रो हों ऽ रा ति वै री ऽ अँ जो रि या ऽ

अन्तरा (१)

सा रे म म पप प प प म प—प म ग रे रे
क ह त सु नत में वि सर गइ ल ऽ अँ जो रि या मैं

सा
सा—रे ग रे—रे ग गप प — म ग — रे—
का ऽ क रों हों ऽ बल मा अज बे ऽ सो वइ ऽ या ऽ

अन्तरा (२)

सा रे म म प प प प म प — प म ग रे रे
चि ऊँ टि हि का टि का टि बल मा ऽ ज ग व लीं मैं

सा ग
सा—रे ग रे—रेरे ग प प—म ग रे रे—
का ऽ क रों हों ऽ गोद में रो वे ऽ ब ल क वा ऽ

अन्तरा (३)

सा रे म म प प प प मम प—प म ग रे रे
ठो ऽ कि हि टो कि ह म बल का ऽ सु त व लीं मैं

सा
सा — रे ग रे — रे ग प पप—म ग रे रे —
का ऽ क रों हो ऽ बो ले ला गलि ऽ चु चु हि या ऽ

गीत—चैता

ताल—जत

मात्रा—चौदह

स्थायी

रे	—	—	म	—	म	—	प	ध	—	ध	—	—	ध
मा	ऽ	ऽ	नि	ऽ	क	ऽ	ह	म	ऽ	रो	ऽ	ऽ	हि
×			२				०			३			
ध	—	नी	पध	नीध	पम	म	म	—	—	मप	ध	—	म
रै	ऽ	ऽ	लेऽ	ऽऽ	ऽऽ	हो	रा	ऽ	ऽ	माऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×			२				०			३			
			ध				म						
प	ध	—	प	—	म	—	पम	गरे	—	—	—	—	—
ज	मु	ऽ	ना	ऽ	ऽ	ऽ	मेंऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×			२				०			३			
ध	ध	—	ध	—	ध	—	ध	प	—	ध	—	—	नी
के	हू	ऽ	ना	ऽ	ही	ऽ	खो	जे	ऽ	ला	ऽ	ऽ	प
×			२				०			३			
													प
पध	नीध	—	प	म	—	म	म	—	—	मप	ध	—	म
दाऽ	ऽऽ	ऽ	र	थ	ऽ	हो	रा	ऽ	ऽ	माऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×			२				०			३			
			ध				म						
प	ध	—	प	म	—	—	पम	गरे,	—	—	—	—	—
ज	मु	ऽ	ना	ऽ	ऽ	ऽ	मेंऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×			२				२			३			

अन्तरा (१)

प ध — सा — सा — सा सा — सा — सानी ध
ओ ही ऽ रे ऽ ज ऽ मु न ऽ वा ऽ केऽ ऽ
× २ ० ३

नी
— प ध सा — रे — रे सा — सा — सानी धप
ऽ चि क टि ऽ ऽ ऽ म टि ऽ या ऽ ऽऽ ऽऽ
× २ ० ३

ध ध — ध — ध — ध प — ध — नी —
च ल ऽ त ऽ में ऽ पाँ व ऽ व्रि ऽ छि ऽ
× २ ० ३

प प
पध नीध — म — म — म — — मप ध — म
लइ ऽऽ ऽ ले ऽ हो ऽ रा ऽ ऽ माऽ ऽ ऽ ऽ
× २ ० ३

ध
प ध — प — म — पम गरे — — — — —
ज मु ऽ ना ऽ ऽ ऽ मेंऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
× २ ० ३

इस गीत के अन्य अन्तरे निम्नांकित हैं :

ओहि रे जमुनवा के करिया पनिया,
देखत में मन घबरइले हो रामा
जमुना में ॥ २॥

तोरा लेखे ग्वालिनि मानिक हिरेले,
मोरा लेखे चान छपितवा हो रामा।
जमुना में ॥३॥
दास बुलाकी चइत घाँटो गावे,
गाइ-गाइ विरहिनि समुझावे हो रामा।
जमुना में ॥४॥

गीत—विदेसिया

ताल—दीपचंदी

स्थायी

सा रे —रे प म — ग मग — सारे — सा —
र हि ऽ या ऽ त ऽ क तऽ ऽ मोड ऽ री ऽ
× २ ० ३

सा रे — म — ग — रे सा — सा — — —
भा री ऽ भइ ऽ ले ऽ अँ खि ऽ याँ ऽ ऽ ऽ
× २ ० ३

अन्तरा (१)

प प — ध सा सा — नी सा नी ध नीधप —
अ म ऽ वा ऽ मों ऽ जं रि ऽ ग इ लेऽ ऽ
× २ ० ३

प ध — प ध धप — म ग — सारे — सा —
म हु ऽ आ ऽ टऽ ऽ प क ऽ गइ ऽ ले ऽ
× २ ० ३

सा	रे	—	रेप	—	म	—	ग	मग	—	रेसरे	—	सा	—	
क	त	ऽ	दि	ऽ	न	ऽ	ब	टिऽ	ऽ	याऽऽ	ऽ	जो	ऽ	
×			२				०			३				
सा	रे	—	रेम	—	ग	—	रे	सा	—	सा	—	—	—	
हइ	वे	ऽ	रेऽ	ऽ	वि	ऽ	दे	सि	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ[1]	

१. इस गीत के अन्य अन्तरों के लिए 'भोजपुरी नृत्य-नाट्य' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत 'बिदेसिया' नामक गीत देखिए।

: ६ :

लोक-कला

लोक-कला उतनी ही प्राचीन है, जितनी पुरानी मानव-सभ्यता। प्राचीन काल से ही मानव अपने हृदय की भावनाओं को रंग और रेखा का आकार देकर उसे साकार करने का प्रयत्न करता रहा है। गाँवों में लोक-कला के आज भी दर्शन होते हैं। यद्यपि किसी प्रकार का प्रोत्साहन प्राप्त न होने के कारण यह धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। ग्रामीण कलाकार यद्यपि कला के सिद्धान्तों से परिचित नहीं होते, फिर भी उनकी कृतियाँ बड़ी रमणीय तथा चित्ताकर्षक होती हैं।

भोजपुरी-प्रदेश में लोक-कला प्रधानतया निम्नांकित रूपों में पाई जाती है—

(१) भित्ति-चित्र,
(२) अल्पना,
(३) थापे,
(४) मृण्मयी मूर्तियाँ (टेरा कोटाज),
(५) धातु-मूर्तियाँ,
(६) गोदना

(७) मेंहदी,

(८) महावर।

स्त्रियाँ विभिन्न उत्सवों और त्यौहारों पर अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों को घर की दीवार पर अंकित करती हैं। विवाह के अवसर पर वर के लिए घर के एक कमरे को विशेष रूप से सजाया जाता है, जिसे 'कोहबर' कहते हैं। इस घर में अनेक भित्ति-चित्र बने रहते हैं, जिनमें गणेश, महावीर और देवी की मूर्तियाँ अंकित की जाती हैं। इन चित्रों को बनाने के पहले दीवार को गोबर से लीपते हैं। जब वह सूख जाती है, तब उस पर चित्र-कर्म प्रारम्भ करते हैं। कहीं-कहीं इन चित्रों को बनाने में (१) लाल, और (२) सफेद, दो रंगों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। गेरू को घोलकर लाल रंग तैयार किया जाता है। सफेद रंग के लिए चावल के आटे को घोलते हैं, अथवा चावल को चार-छः घण्टे भिगोकर छोड़ देते हैं। फिर उसे पीसकर सफेद रंग बना लिया जाता है। इन्हीं दोनों रंगों की सहायता से चतुर गृहिणियों की कोमल अँगुलियाँ इन सुन्दर चित्रों का निर्माण करती हैं। सभी मंगल-कार्यों में गणेश का पूजन आवश्यक होता है। हनुमान कार्य-सिद्धि में सहायक होते हैं। अतः इनका चित्र विशेष रूप से अंकित किया जाता है। ये भित्ति-चित्र बहुत टिकाऊ होते हैं। स्त्रियाँ या लड़कियाँ विशेष व्रतों के अवसर पर भी चित्र बनाती हैं। कार्तिक-अगहन के महीनों में कुमारी लड़कियाँ 'पिड़िया' का व्रत करती हैं। इस समय ये गोबर के छोटे-छोटे पिण्डों (टुकड़ों) की गोल आकृति बनाकर उन्हें दीवार पर चिपकाती हैं। ये पिण्ड वर्गाकार रूप में चिपकाये जाते हैं। इसके साथ ही अनेक चित्र भी बनाए जाते हैं।

मांगलिक अवसरों पर अल्पना बनाने की प्रथा भी प्रचलित है। विवाह के अवसर पर जब बारात लड़की वाले के घर आती है, उस समय 'द्वार-पूजा' या वर की पूजा के लिए थोड़ी-सी जमीन को लीपकर अल्पना बनाई जाती है। यह काम गाँव के नाई की स्त्री करती है।

वह सूखे आटे को लेकर चुटकी से जमीन पर गिराती जाती है। इस प्रकार वह एक वर्गाकार रचना करती है। इस वर्ग के बीच में गोली आकृति भी बनी रहती है, जहाँ कलश की स्थापना की जाती है। सत्यनारायण की कथा के अवसर पर तथा अन्य मांगलिक कृत्यों के समय विभिन्न प्रकार की अल्पना का निर्माण किया जाता है। भोजपुरी में इसे 'चौक पूरना' कहते हैं।

काठ के तखते के ऊपर चावल से भी अल्पना बनाई जाती है। कभी-कभी इसके लिए रंगों का भी प्रयोग किया जाता है।

हाथ की अंगुलियों का थप्पा या ठापा मारकर जो चित्र अंकित किये जाते हैं, उन्हें 'थापा' कहते हैं। विवाह के लिए जो मण्डप तैयार किया जाता है, उसके बाँसों को गाड़ने के पहले उन पर उस लड़की की पाँचों अंगुलियों का 'थापा' लगाया जाता है, जिसका विवाह होने वाला है। यह थापा चावल को पीसकर बनाये गए सफेद रंग से लगाया जाता है। इसी प्रकार पर्वतीय जिलों—विशेषकर नैनीताल—में दीपावली के अवसर पर स्त्रियाँ लक्ष्मी के आने के लिए मार्ग बनाती हैं। यह मार्ग लाल और सफेद रंग को मिलाकर 'मुट्ठी' का थापा लगाकर तैयार किया जाता है। यह थापा बड़ा कलात्मक होता है और बड़े परिश्रम से तैयार किया जाता है।

मृण्मयी मूर्तियाँ—जिन्हें अंग्रेजी में 'टेराकोटाज़' कहते हैं—को बनाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। मोहेन्जोदड़ो में जो खुदाई हुई है, उसमें बहुत-सी मिट्टी की मूर्तियाँ निकली हैं। गाँवों में देहाती कुम्भकार के हाथों द्वारा यह कला आज भी सुरक्षित है। दीपावली के अवसर पर ये ग्रामीण कुम्भकार गणेश, सरस्वती, हनुमान और दुर्गा आदि देवी-देवताओं की इतनी सुन्दर मूर्तियाँ बनाते हैं कि उन्हें सदा देखते ही रहने की इच्छा होती है। इन मूर्तियों में विभिन्न अंगों के प्रमाण का सुन्दर सामञ्जस्य पाया जाता है। इन मूर्तियों पर जो रंग किया हुआ होता है, वह भी कुछ कम आकर्षक नहीं होता। इनको

देखकर यह आश्चर्य होता है कि इन ग्रामीण कलाकारों ने ऐसी सुन्दर मूर्तियाँ किस प्रकार बनाईं। इन मूर्तियों के अतिरिक्त ये कुम्भकार सुराही तथा घड़ों पर सुन्दर नक्काशी भी काढ़ते हैं। विवाह के अवसर पर मण्डप में जो 'कलश' रखा जाता है, वह विभिन्न देवताओं के चित्रों से अंकित रहता है। इस समय जिन मिट्टी के घड़ों—जिन्हें 'कुण्डा' कहते हैं—में मिठाई और खाजा भरकर दिया जाता है, उन पर भी भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों के चित्र विभिन्न रंगों से बनाये गए होते हैं।

धातु—विशेषकर सोने और चाँदी—पर देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की जाती हैं। शीतला देवी की पूजा के अवसर पर चाँदी के ऊपर उनकी मूर्ति उनके वाहन के साथ बनाई जाती है। जो पुरुष अपनी प्रथम पत्नी की मृत्यु के उपरान्त दूसरा विवाह करते हैं, वे अपनी द्वितीय पत्नी के पहनने के लिए सोने का बना हुआ एक ऐसा आभूषण ले आते हैं, जिस पर उनकी प्रथम स्त्री की प्रतिकृति अंकित रहती है। इस गहने को सम्भवतः 'सौत' कहते हैं। इसी प्रकार ताँबे के ऊपर विशेष मन्त्र-तन्त्र उत्कीर्ण किये जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि ऐसे यन्त्रों को पहनने से मनुष्य विघ्न-बाधाओं से सुरक्षित रहता है।

भोजपुरी प्रदेश में विवाह के पश्चात् प्रत्येक स्त्री के लिए गोदना गोदाना आवश्यक है। स्त्रियों की ऐसी धारणा है कि ऐसा न करने से अगले जन्म में किसी नीच योनि में उत्पन्न होना पड़ता है। आजकल तो गोदना गोदने के लिए मशीनें चल पड़ी हैं, परन्तु देहातों में आज भी यह कार्य धतूरे के दूध में काजल मिलाकर रंग तैयार करके सूई चुभोकर किया जाता है।

ये गोदने विभिन्न आकृति के बनाए जाते हैं। कोई गोले होते हैं, तो कोई वर्गाकार। चतुर गोदने वाली स्त्री विभिन्न प्रकार की फूल-पत्तियों को गोदने में काढ़ती है। आजकल शिक्षित कही जाने वाली स्त्रियों में इसकी प्रथा प्रतिदिन कम होती जा रही है, फिर भी गाँवों में इसका रिवाज अभी वैसा ही है। नीच जाति की स्त्रियाँ तो न केवल अपनी

दोनों बाहुओं पर, बल्कि पेट, पीठ तथा दोनों पैरों में भी गोदना गोदवाती हैं। गत पूर्ण कुम्भ (फरवरी १९५४) के अवसर पर एक विशेष सम्प्रदाय के ऐसे अनुयायी देखने में आये, जिनके—स्त्री और पुरुष दोनों के—शरीर के प्रत्येक अंग में (यहाँ तक कि सिर में भी) राम-राम अंकित था।

स्त्रियाँ सावन के महीने में अपने हाथों में मेंहदी लगाती हैं। वे मेंहदी के पत्तों को सिल पर खूब महीन पीसती हैं और उसमें सरसों का थोड़ा तेल डाल देती हैं जिससे मेंहदी का रंग अधिक टिकाऊ हो जाता है। वे सींक से अपने हाथों में मेंहदी लगाती हैं। स्थान की कमी के कारण उन्हें बड़ी बारीकी से काम लेना होता है। वे भाँति-भाँति की त्रिकोणात्मक, चतुष्कोणात्मक और पंचकोणात्मक आकृतियाँ रेखाओं और बिन्दियों के सहारे आकर्षक शैली में बनाती जाती हैं। जब तक उनके हाथ की मेंहदी सूख नहीं जाती तब तक वे कोई काम नहीं करती हैं। इसलिए काम न करने वाले व्यक्ति के लिए भोजपुरी में यह कहावत प्रचलित है कि 'उनुकरा हाथ में मेंहदी लागल बा।'

विशेष मांगलिक अवसरों पर स्त्रियाँ अपने पैरों में महावर लगाती हैं, जिसे 'गोड़ भरना' कहते हैं। यह महावर पैरों के चारों ओर लगाया जाता है। बीच में स्वस्तिक की आकृति का चिह्न भी कभी-कभी बनाया जाता है। चतुर नाईन अनेक प्रकार के फूल-पत्ते भी महावर द्वारा काढ़ती है।

: १० :

उपसंहार

पिछले पृष्ठों में भोजपुरी भाषा और साहित्य का संक्षिप्त परिचय पाठकों के सामने उपस्थित किया गया है। इसके साथ ही भोजपुरी रंगमंच, लोक-संगीत तथा लोक-कला का भी विवरण देने का विनम्र प्रयास किया गया है। इस प्रकार भोजपुरी लोक-साहित्य के प्रायः प्रत्येक अंग का दिग्दर्शन इस पुस्तक में हुआ है।

जब से इस देश ने स्वतन्त्रता की प्राप्ति की है तब से भोजपुरी जनता में एक नवीन जागरण दिखाई पड़ता है, एक नवीन चेतना का जन्म लक्षित होता है। वह नवीन चेतना है अपने साहित्य तथा संस्कृति की रक्षा करना। फलस्वरूप अनेक समितियों, सम्मेलनों तथा परिषदों का जन्म हुआ है। आरा के कुछ विद्वानों तथा उत्साही कार्यकर्ताओं ने मिलकर एक 'भोजपुरी समिति' की स्थापना की है, जिसके तात्वावधान में 'भोजपुरी' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के सम्पादक-मण्डल में भोजपुरी जनपद के अनेक धुरन्धर विद्वान् हैं जिनमें बाबू शिवपूजन सहाय, राहुल सांकृत्यायन, पं० बलदेव उपाध्याय तथा डॉ० उदयनारायण तिवारी का नाम प्रसिद्ध है। परन्तु इसके उत्साही

तथा कर्मठ प्रबन्ध सम्पादक हैं श्री रघुवंश नारायण सिंह। आप ही के अटूट उत्साह, और अथक लगन से इस पत्रिका का सम्पादन तथा संचालन बड़े सुचारु रूप से हो रहा है। इस पत्रिका द्वारा भोजपुरी के अनेक नवयुवक कवि प्रकाश में आ रहे हैं तथा सैकड़ों लोक-गीत, कथाएँ, मुहावरे तथा कहावतें प्रकाशित हो रही है। भोजपुरी समिति ने इस जनपद में प्रचलित लोक-साहित्य के संग्रह का कार्य भी अपने हाथों में लिया है। इसने अनेक लोक-गाथाओं—जैसे लोरकी और विजय-माल आदि—के संग्रहकर्ताओं को पुरस्कार देने की घोषणा भी की है। भोजपुरी भाषा में लिखे गए नवीन कवियों के काव्यों के प्रकाशन का बीड़ा भी इसने उठाया है। स्थानीय कवियों, लेखकों, साधु-सन्तों तथा वीरों के जीवन-चरित को प्रकाशित करके इनकी कीर्ति को नष्ट होने से बचाया गया है। इस प्रकार भोजपुरी समिति तथा 'भोजपुरी' पत्रिका इस साहित्य की रक्षा के लिए भगीरथ प्रयत्न कर रही है।

इस जनपद के कवियों, लेखकों तथा विद्वानों को एक स्थान पर एकत्रित होकर विचार-विनिमय करने का अवसर मिल सके इस हेतु भोज-पुरी साहित्य-सम्मेलन की स्थापना भी की गई है। इस सम्मेलन का अधि-वेशन प्रति वर्ष होता है। इसका सर्व प्रथम अधिवेशन सीवान (जिला छपरा, बिहार) में हुआ था जिसके सभापति थे हिन्दी तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् पं० बलदेव उपाध्याय। इसके पश्चात् त्रिपिटिकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन, श्री जगजीवन राम (केन्द्रीय सरकार के मन्त्री) आदि लोगों ने इस आसन को सुशोभित किया है। इस सम्मेलन द्वारा भोजपुरी साहित्य को गति और प्रगति मिली है। इसके द्वारा प्रचार का कार्य भी हो रहा है। इस सम्मेलन के साथ ही भोजपुरी कवि-सम्मेलन भी हुआ करता है जिसमें भोजपुरी के अनेक नवयुवक कवियों को अपनी काव्य-कला का प्रदर्शन करने का सुअवसर मिलता है। बहुत से ऐसे कवि, जिन्हें कोई जानता भी नहीं था, धीरे-धीरे प्रकाश में आ रहे हैं। आशा है कि यह सम्मेलन भोजपुरी साहित्य की रक्षा तथा निर्माण में

विशेष सहायक सिद्ध होगा ।

अभी कुछ वर्ष हुए बिहार-राज्य की सरकार हिन्दी में स्थायी साहित्य के निर्माण के लिए तथा बिहारी-भाषाओं—जिनमें भोजपुरी विस्तार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—के विकास के हेतु 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' की स्थापना की है, जिसका प्रधान श्रेय बिहार के तत्कालीन शिक्षा-सचिव श्री जगदीश चन्द्र माथुर आई० सी० एस० को प्राप्त है। इस परिषद् ने भोजपुरी जनपद में बिखरे हुए हज़ारों लोक-गीतों, कथाओं, कहावतों और मुहावरों के संग्रह का कार्य प्रारम्भ किया है तथा इस कार्य के लिए वैतनिक कार्यकर्ता नियुक्त किये गए हैं। इस प्रकार कुछ लोक-साहित्य संग्रहीत भी हुआ है। यह परिषद् दुर्गाशंकर प्रासद सिंह की लिखी हुई पुस्तक 'भोजपुरी कवि और काव्य' का प्रकाशन भी कर रही है। इसने डॉ० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डि० लिट्० की भोजपुरी भाषा-सम्बन्धी पुस्तक को भी प्रकाशित किया है।

बिहार की सरकार ने 'नृत्य-नाट्य-संगीत परिषद्' की स्थापना भी की है, जिसका उद्देश्य है बिहार-राज्य में प्रचलित लोक-नृत्य, लोक-नाट्य और लोक-संगीत की रक्षा करना तथा उन्हें प्रोत्साहन देना। इस परिषद् की मुख-पत्रिका का नाम 'बिहार थियेटर' है जिसमें इन विषयों के अधिकारी विद्वानों द्वारा लेख प्रकाशित होते हैं। पहले इस पत्रिका के अवैतनिक सम्पादक थे श्री जगदीशचन्द्र माथुर। इस परिषद् द्वारा लोक-संगीतज्ञों तथा नाटक खेलने वालों को बड़ा प्रोत्साहन मिला है। बहुत से लोक-नृत्य—जिन्हें लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे—अब महत्त्व-पूर्ण समझे जाने लगे हैं। इस परिषद् द्वारा बड़ा उपयोगी कार्य हो रहा है और आशा है कि लोक-कला को इससे बड़ा बल और सम्बल मिलेगा।

आल इण्डिया रेडियो के लखनऊ, इलाहाबाद तथा पटना स्टेशनों से पंचायत-घर का प्रोग्राम प्रतिदिन प्रसारित किया जाता है। इस प्रोग्राम में बहुत-सी भोजपुरी लोक-कथाएँ तथा लोक-गीत भी होते हैं।

अनेक भोजपुरी एकांकी नाटक भी प्रसारित किये जाते हैं। इससे नगर-निवासियों को भी लोक-गीतों को सुनने का अवसर मिलता है और लोक-गीतों के गाने वाले को प्रतिष्ठा और धन प्राप्त होता है। रेडियो एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा लोक-साहित्य का प्रचार बड़ी आसानी से किया जा सकता है और इसके प्रति लोक-रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

विदेशों में लोक-साहित्य के संकलन तथा प्रकाशन के लिए अनेक समितियाँ और परिषद् स्थापित हैं। परन्तु इस देश में विद्वानों का ध्यान इस दिशा में अभी विशेष आकृष्ट नहीं हुआ है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों ने भी इस सम्बन्ध में अभी कुछ विशेष कार्य नहीं किया है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी केन्द्रीय सरकार एक ऐसी 'राष्ट्रीय लोक-साहित्य परिषद्' की स्थापना करे जिसका कार्य इस महान् देश के विभिन्न प्रान्तों (राज्यों) में पाये जाने वाले लोक-साहित्य का संग्रह, सम्पादन तथा प्रकाशन हो। डॉ० ग्रियर्सन द्वारा किये गए भारतीय भाषा-सर्वे की तरह इस देश के लोक-साहित्य का सर्वे होना चाहिए तथा ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे यह अमूल्य साहित्य काल के गाल में न चला जाय। आयरलैण्ड की सरकार ने 'आयरिश फोकलोर कमीशन' की स्थापना करके इस देश की लोक-वार्ता की रक्षा की है। केन्द्रीय सरकार ने भी 'संगीत नाटक अकादेमी' नाम से इसी प्रकार की संस्था स्थापित की है।

भोजपुरी-प्रदेश के विद्वानों का यह कर्तव्य है कि वे भोजपुरी जनपद के लोक-वार्ता (फ़ोकलोर) तथा लोक-साहित्य की रक्षा के लिए 'भोजपुरी लोक-साहित्य परिषद्' की स्थापना करें। इस परिषद् का एक-मात्र उद्देश्य लोक-गीतों, गाथाओं, कथाओं, सूक्तियों, सुभाषितों, कहावतों और मुहावरों का संग्रह करके उनका वैज्ञानिक पद्धति से सम्पादन करके प्रकाशन होना चाहिए। लोक-गीतों का संग्रह करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि गवैयों से उन्हें गवाकर उनके रेकार्ड भी बनाने चाहिएँ। इसके साथ ही लोक-गीतों की स्वर-लिपि (नोटेशन) भी तैयार करना आव-

श्यक है।

भोजपुरी लोक-गीतों के कुछ संग्रह तो प्रकाशित भी हो चुके हैं परन्तु लोक-वार्ता के संग्रह की ओर भी ध्यान देना चाहिए। वर्तमान लेखक ने अपने नवीनतम ग्रन्थ में 'भोजपुरी फ़ोकलोर' की बड़ी विशद मीमांसा की है तथा इसके विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। ऐसी आशा की जाती है कि इस पुस्तक के प्रकाशित हो जाने पर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जायगी।

भोजपुरी का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इसके साहित्य की रक्षा तथा संवर्धन के लिए अनेक विद्वान् कृत-संकल्प हैं। हिन्दी की बोलियों में शोध का जितना कार्य भोजपुरी को लेकर हुआ है उतना सम्भवतः अन्य बोलियों पर नहीं। इसीसे इसके महत्त्व का अनुमान किया जा सकता है। आशा है भावी विद्वान् भी अपनी प्रतिभा के प्रसाद से इसके भण्डार को भरने की कृपा करेंगे।

अध्ययन-सामग्री

(क) ग्रन्थ

१. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय	भोजपुरी-ग्राम-गीत (भाग १)
,, ,,	भोजपुरी ग्राम-गीत (भाग २)
,, ,,	भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन (प्रेस में)
,, ,,	भोजपुरी लोक-संगीत (प्रेस में)
२. दुर्गाशंकर प्रसादसिंह	भोजपुरी लोक-गीतों में करुण रस
,, ,,	भोजपुरी कवि और काव्य (प्रेस में)
३. श्री आर्चर	भोजपुरी ग्राम्य-गीत
४. डॉ० उदयनारायण तिवारी	दि ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेण्ट ऑफ भोजपुरी (अप्रकाशित)
५. डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	स्टडीज इन भोजपुरी फानिटिक्स (अप्रकाशित)
६. डॉ० ग्रियर्सन	लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ६, खण्ड २

(ख) लेख

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय	भोजपुरी लोक-गीतों में काव्य (हिन्दुस्तानी, प्रयाग)
,, ,, ,,	भोजपुरी लोक-गीतों में 'दिव्य' की प्रथा ('सम्मेलन-पत्रिका' लोक-संस्कृति अङ्क, सं० २०१० वि०)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय	भोजपुरी लोकगीत ('जनपद' भाग १ अङ्क १)
,, ,, ,,	भोजपुरी लोक-संगीत 'बिहार थियेटर' भाग १, अङ्क ४)
,, ,, ,,	भोजपुरी लोक-गीतों में यज्ञोपवीत संस्कार। ('जनपद' भाग १, अङ्क ५)
,, ,, ,,	एन इण्ट्रोडक्शन टु भोजपुरी फोक-साङ्गस एण्ड बैलेड्स (जनरल आफ अमेरिकन फोकलोर फिलाडेलफिया, अमेरिका)
,, ,, ,,	ए जेनेरल सर्वे आफ फोकलोर एक्टिविटीज़ इन इण्डिया (मिडवेस्ट फोकलोर, अमेरिका)
,, ,,	भोजपुरी फोकलोर एण्ड बैलेड्स ईस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट, लखनऊ)
डॉ० उदयनारायण तिवारी	ए डायलेक्ट आफ भोजपुरी (जनरल आफ बिहार एण्ड ओड़िसा रिसर्च सोसाइटी)
,, ,,	भोजपुरी लोकोक्तियाँ ('हिन्दुस्तानी' अप्रैल-जुलाई १९३९)
,, ,,	भोजपुरी मुहावरे ('हिन्दुस्तानी' अप्रैल-अक्टूबर १९४० ई० जनवरी १९४१ ई०)
,, ,,	भोजपुरी पहेलियाँ ('हिन्दुस्तानी' अक्तूबर-सितम्बर सन् १९४२ ई०)
पं० गणेश चौबे	लोक-गीतों का अलंकरण ('साहित्य' पटना, वर्ष १, अङ्क ३)

पं० गणेश चौबे	भोजपुरी लोक-गीतों में चित्र-कला ('जनपद', वर्ष १, अङ्क ३)
,, ,,	भोजपुरी लोक-कथाएँ ('आजकल' लोक-कथा विशेषाङ्क)
दुर्गाशंकर प्रसादसिंह	भोजपुरी लोक-गीतों में गौरी का स्थान (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी) ।

इसके अतिरिक्त 'भोजपुरी' में अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं जिनका उल्लेख स्थानाभाव से यहाँ करना कठिन है। डॉ० ग्रियर्सन तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखे गए लेखों का उल्लेख पुस्तक में यथास्थान कर दिया गया है।

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No.
Date
SIMLA